THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_180227
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H891 D27K Accession No. G.H. 3177

Author दयाराम

Title कविश्री माला : गुजराती १९५२

This book should be returned on or before the date last marked below.

कवि-श्री माला

* गुजराती *

कवि :

दयाराम

लेखक–सम्पादक

अनन्तराय रावल

"भारत सरकार की ओर से भेंट"

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

प्रकाशक :
मोहनलाल भट्ट
मन्त्री :
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,
हिन्दीनगर, वर्धा
● ● ●

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण—३०००
मई, १९६२
मूल्य—रु. २/—
● ● ●

मुद्रक :
मोहनलाल भट्ट
राष्ट्रभाषा प्रेस,
हिन्दीनगर, वर्धा
● ● ●

आमुख

हर्षका विषय है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा अपने कार्य कालके २५ वर्ष सन् १९६१ में पूरे कर रही है। इस उपलक्ष्यमें मनाये जानेवाले रजत-जयन्ती महोत्सवके अवसर पर सभी भारतीय भाषाओंके मान्य कवियोंका तथा उनके उत्कृष्ट काव्यका परिचय 'कवि-श्री माला' की पच्चीस पुस्तकोंमें हिन्दी-गद्यानुवाद सहित प्रकाशित करनेकी योजनाके अन्तर्गत प्रस्तुत ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष आ रहा है।

यद्यपि किसी भी भाषाके सर्वश्रेष्ठ काव्य-सर्जकका निश्चय करना एक कठिन कार्य है, फिर भी अपनी सीमाओंको ध्यानमें रखते हुए गण्यमान्य उन-उन भाषाओंके विद्वानोंकी रायसे ही चुनावका कार्य सम्पन्न किया गया है।

प्रत्येक पुस्तकके आरम्भमें जिस भाषाके कविकी रचनाओंका चयन किया गया है, उस भाषाके साहित्यका परिचय और कवि विशेषका परिचय दिया गया है। जिस भाषाके दो कवियोंका चुनाव किया गया है, उनका चुनाव करते समय सन् १९२० से पूर्वका साहित्य और १९२० से बादका साहित्य--इस तरहसे एक विभाजन-रेखा ध्यानमें रखी गई है। इसका कारण यह है कि लगभग सन् १९२० के पूर्वके तथा १९२० के बादके साहित्यमें प्रवाहित विचार-धारामें एक विशेष प्रकारका अलगाव-सा पाया जाता है।

श्री अनन्तरायजी रावलने प्रस्तुत पुस्तकमें संकलित साहित्यको चुनने, काव्यांशको सम्पादित कर सारी सामग्रीको इस रूपमें प्रस्तुत करनेमें सहयोग दिया है। समूची सामग्रीको गुजरातीसे हिन्दीमें अनूदित करनेमें श्री जेठालालजी जोशी एवं श्री रामअवधेशजी त्रिपाठीका अनन्य सहयोग मिला है। कुछ कविताओंके हिन्दी अनुवादमें श्री वासुदेव व्यासने भी सहायता की है। पुस्तकमें संकलित ब्लॉकका रेखाचित्र कलागुरु श्री रविशंकरजी रावलके मूल चित्रके आधारपर श्री रमण चित्रकारने तैयार किया है। संग्रहकी आवरण डिजाइनको बनवा देनेमें श्री व्ही. एन. अडारकरजी (डीन, सर जे. जे. इन्स्टीट्यूट आफ अप्लाईड आर्ट, बम्बई) का उदार सहयोग मिला है, उसके लिए समिति सभीकी आभारी है।

इसके अतिरिक्त छपाई तथा अन्यान्य दृष्टियोंसे जिन-जिनका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग मिला है, उनके प्रति भी समिति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है।

आशा है, प्रस्तुत संग्रह पाठकोंको रुचिकर एवं उपयोगी प्रतीत होगा।

मन्त्री,
राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

अनुक्रमणिका

	पृष्ठांक
गुजराती-साहित्य-परिचय [प्रारम्भसे १९२० तक]	१
कवि-परिचय	२५
काव्य-सञ्चय	४३

कवि-श्री माला

गुजराती

दयाराम

गुजराती साहित्य परिचय

[प्रारम्भसे १९२० तक]

गुजराती भाषा
और
उसका साहित्य

• • •

आजके गुर्जर प्रान्तमें अपने पुराने नामोंको सुरक्षित रखनेवाले कच्छ-सौराष्ट्र तथा पुराने जमानेके विभिन्न कालोंमें--'आनर्त', 'गुर्जर्त्रा मण्डल', 'गुर्जर देश', 'अनूप', 'लाट' और 'शूपारक' नामसे प्रख्यात प्रदेशोंका समावेश हो जाता है। करीब ६०० वर्ष पूर्व इस प्रदेशका नाम गुजरात हुआ। इस समयका गुजरात नाम तथा इसके पूर्वके 'गुर्जर्त्रा मण्डल' तथा 'गुर्जर' नामोंका सम्बन्ध गुर्जर जातिके साथ है। शक कुलकी यह जाति पाँचवीं शताब्दीके उत्तरार्धसे छठी शताब्दीके पहले चरणके बीच भारतमें प्रविष्ट होकर दक्षिण पञ्जाबमें होकर राजपूतानेमें बस गई, इसके बाद नर्मदाके तटवर्ती प्रदेश एवं सौराष्ट्रमें फैली। ह्वेनसांगका देखा हुआ 'भिन्नमाल' गुर्जर राज्य था। उत्तरी छोरसे मुसलमानोंके आक्रमणके कारण दसवीं शताब्दीके मध्य भागमें गुर्जरोंने 'भिन्नमाल'को छोड़कर वर्तमान उत्तर गुजरातमें अपना निवास आरम्भ किया। सोलंकी और बाघेला राजाओंके हाथों तथा उसके बाद मुसलमान शासकोंके हाथों पश्चिम और दक्षिणकी ओर जो सीमा विस्तार हुआ, उसे ही वर्तमान गुजरात माना गया है।

गुजराती भाषा-साहित्यका यह सौभाग्य है कि उसके पास बहुत-सी हस्तलिखित सामग्री है, जो गुजराती भाषाके प्रत्येक शतकके क्रमिक विकासका इतिहासका काम देती है और मध्यकालमें विकसित साहित्य-प्रकारोंके अनेक नमूने प्रस्तुत करती है। इससे यह सिद्ध होता है कि गुजराती भाषाके विकासके साथ-साथ गुजरातीमें अनेक प्रकारके साहित्यका भी सर्जन हुआ है। ईसाकी बारहवीं शताब्दीसे लिखित साहित्यिक कृतियोंका मुद्रित स्वरूपमें प्रकाशन गत शताब्दीमें होने लगा। तब तक के कालके साहित्यको मध्यकालीन साहित्य और उसके बादके साहित्यको अर्वाचीन साहित्यका कहा जाता है। इस तरह गुजराती साहित्य दो भागोंमें बँट जाता है।

मध्यकालीन गुजराती साहित्य अधिकतर पद्यमें ही लिखा गया है। किन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि उस समयमें गद्य बिलकुल लिखा ही नहीं गया। संस्कृत, प्राकृत धर्म ग्रन्थोंके अनुवाद, भाष्यरूप बालावबोध और 'टबा' ये गद्य हैं। इसी तरह स्वतन्त्र दृष्टान्त कथाओंमें (पद्यके साथ गद्यमें भी) 'पृथ्वीचन्द्र चरित्र', 'पंचदंड', 'सिंहासन बत्रीसी' आदि कहानियाँ गद्यमें लिखी गई हैं, परन्तु उसका परिमाण पद्यकी तुलनामें कम रहा है। दुनियाके अधिकांश साहित्योंमें कविता ही प्रथम लिखी गई है, वैसे ही गुजरातीका प्रारम्भ भी कवितासे हुआ है। उसका एक कारण संस्कृत, अपभ्रंश आदि साहित्योंकी परम्परा भी है। जब गुजरातमें मुद्रण यन्त्र नहीं था और साहित्य कण्ठोपकण्ठ स्मरण रखा जाता था, तब कण्ठस्थ करनेमें गद्यकी अपेक्षा पद्य ही अधिक सुविधाजनक होता था। यह उस समयकी परिस्थितिका दूसरा कारण था। इसी कारणसे मध्यकालीन गुजराती साहित्यमें पद्यमें भी वार्णिक वृत्तोंकी अपेक्षा मात्रिक वृत्त एवं लय युक्त रचनाओंका सर्जन अधिक मात्रामें हुआ है।

धर्म-साहित्यका केन्द्र-बिन्दु :

मध्यकालीन साहित्यकी मुख्य विशिष्टता यह है कि उसकी विषय-परिधि अर्वाचीनकी तुलनामें बहुत लघु है और वह धर्मसे चालित है। पन्द्रहवें शतकके पूर्वका तथा उसके बाद जैन साधुओं द्वारा लिखा गया साहित्य धार्मिक ही है। उनकी धर्म-कथाएँ, रास-रासा, प्रबन्ध, चरित्र, बालावबोध और सज्जाओंके अलावा उनके शृंगार-प्रधान फागुओं और 'पृथ्वीचन्द्र चरित्र' जैसे साहित्यिक शैलीवाले वाग्विलास तथा नल दमयन्ती रास-जैसी रसात्मक पुरानी कथाएँ और 'शीलवती ना रास' जैसी कहानियाँ भी अन्ततोगत्वा धर्मसे ही अनुप्राणित हैं। नेमिनाथ, बाहुबलि और स्थूलिचन्द्र-जैसे धार्मिक पुरुषोंके तथा विमल मन्त्री, समरसिंह और वस्तुपाल-जैसे जैन शासनके आदर्श सेवक जैसे श्रावकोंके चरित्र लिखनेमें जैन साधुओंकी धर्म-निष्ठा ही दिखाई देती है। उस समय जैन धर्मके

सिवाय और आज भी, सुप्रतिष्ठित धर्म है हिन्दू धर्म। हिन्दू धर्मकी महती विशेषता यह है कि अधिकार-भेद, प्रकृति-भेदके अनुसार मूर्ति पूजासे शुरू करके निराकार निर्गुण ब्रह्मकी उपासना तकके; तथा कर्म, भक्ति, ज्ञान और योग-जैसे विविध साधनोंका इसमें उदार भावसे स्वीकार किया गया है। हमारे यहाँ ईश्वरकी उपासना रामके रूपमें, गोपीजन वल्लभ श्रीकृष्णके रूपमें, शिवके रूपमें तथा शक्तिके रूपमें की गई है, जीव-जगत और ईश्वरका अद्वैत प्रतिपादित करनेवाला वेदान्त सिद्धान्त भी प्रतिष्ठित है। मध्यकालीन जैनेतर गुजराती कवितापर इन सबका प्रभाव पड़ा है। उनमें नरसिंह, मीरां और दयारामके प्रेम लक्षणा भक्तिके उत्तम पद है, भक्त, भगवान और भक्तिका गौरव गानेवाले भालण, प्रेमानन्द आदिके आख्यान है। शिव-भक्तिका साहित्य है। सप्तशतीके अनुपाद और वल्लभके गरबा भी शिव-भक्तिकी कविता है, नरसिंह, अखा, नरहरि, प्रीतम आदि की वेदान्ती ज्ञानमार्गी कविताका प्रवाह है और गोरख, कबीर मार्गी और स्वामीनारायण सम्प्रदायके सन्तोंकी भजन-वाणी भी है।

मध्यकालमें पारसियों और मुसलमानोंके आगमनके साथ जरथोस्ती और इसलाम धर्मका प्रवेश भी गुजरातमें हुआ। इस धर्मके अनुयायी भी मौन नहीं बैठे रहे। उन्होंने मध्यकालमें जो कुछ लिखा है, वह सब धर्म-भावनासे प्रेरित होकर ही लिखा है। उस समय पारसियोंने अपने धर्म-ग्रन्थोंसे संस्कृतमें और फिर संस्कृतसे तत्कालीन गुजरातीमें भाषान्तर किया है। उसी तरह नूर सतागर और पीरसद्रुद्दीन जैसे इसलाम-उपदेशकोंके प्रभावसे हिन्दू धर्मको छोड़कर इसलाम धर्म स्वीकार करनेवाली खोजा, मतिया तथा वोरा-जैसी जातियोंने भी अपनी धार्मिक कविताएँ लिखी थीं। उनके कवियोंने जो पद तथा भजन लिखे, उनमें कबीर, नानककी वाणीकी ध्वनि विद्यमान है, इसलाम और मुरशिद (गुरु, पीर) की महिमा गाई गई है। वे कवि काव्यके बाह्यांगमें हिन्दू भजन-वाणीकी ही प्रणालीका अनुकरण करते हैं। ईसाई धर्मने भी १९ वें शतककी दूसरी दशाब्दीमें गुजराती भाषामें 'बाइबिल' दी है।

मध्यकालीन गुजराती साहित्यको धर्मकी प्रदक्षिणा करना ही अधिक पसन्द आया है। और उसका कारण राजनैतिक और सामाजिक भूमिका ही है। ११ वीं शताब्दीसे १३ वीं शताब्दी तकके कालको गुजराती भाषा और साहित्यका 'प्रारम्भ काल' माना जाता है। यह काल सोलंकी और बाघेलाओंका शासन-काल था। इस कालमें गुजरात वीरता, व्यापार, साहित्य और कलाके बारेमें अत्यन्त उन्नत था। इस समयके सबसे पुराने साहित्य 'सिद्धहेम' के अपभ्रंशके दोहोंमें अभिव्यक्त वीरता, देश-भक्ति और प्रणय-रसिकता तत्कालीन जनताके पराक्रम और उलासका प्रतीक है। ई. स. १२९७ में अलाउद्दीनकी सेनाने पाटणपर अधिकार कर लिया, तबसे गुजरातकी राजनैतिक स्वतन्त्रता नष्ट हो गई। सौ वर्ष तक दिल्लीके

सूबेदारोंने और उसके बाद गुजरातके स्वतन्त्र सुलतानोंने और उसके पश्चात् मुगल शासकोंके प्रतिनिधियोंने गुजरातपर हुकूमत की। मुसलमान शासकोंमें कुछ शासक धर्मान्ध थे। मन्दिरोंके तोड़-फोड़, धर्म-परिवर्तन और अपनी सम्पत्तिकी लूटसे बचनेके लिए हिन्दू बस्तियाँ प्रदेशके भीतरी हिस्सोंकी ओर हटने लगीं। उस कालमें स्वतन्त्रता प्राप्त होनेकी कोई सम्भावना नहीं थी और जीवन संग्राम इतना जटिल नहीं था कि शान्तिसे जीवन निर्वाह न हो सके। अतः पैतृक व्यवसाय करते हुए, शान्ति और सन्तोषकी जिन्दगी व्यतीत करनेवाले लोगोंमें धर्म पालनकी आकांक्षा जाग्रत होती थी। लोगोंने अन्य धर्मके आक्रमणसे अपनी रक्षा करनेकी स्वाभाविक प्रेरणासे कछुएकी तरह अपनेको संकुचित करके, जाति और महाजनोंके वर्तुलोंमें छिपकर अपने व्रत-नियम, कथा-श्रवण, धर्म-पालन तथा पर्वोत्सव मनाने तथा तीर्थ-यात्रा करनेमें ही अपना श्रेय माना था और आचार-विचारकी परम्परागत प्रणालियोंको जारी रखकर लोगोंने अपने भीतरी चैतन्यको कायम रखा। मुसलमान शासकोंने भी राजनैतिक प्रत्याक्रमण न करनेवाली शान्तिप्रिय प्रजाको अपने ढंगसे रहने देना सीख लिया था। ११ वें शतकसे जोर पकड़नेवाले और सोलहवें शतकमें सारे देशमें फैल जानेवाले भक्ति आन्दोलनने तथा समस्त देशमें तत्कालीन सन्तों और भक्तोंकी प्रकट होनेवाली तेजस्वी परम्पराने भी धर्मको और उसके साहित्यको प्रेरक बल माना था।

संस्कार-प्रदान-साहित्य :

इस प्रकारकी राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितिमें हिन्दू राजाओं द्वारा संस्कृतको जो अब तक राज्याश्रय प्राप्त था वह बन्द हो गया। साहित्य लोकाश्रयी बना और इससे लोकभाषा साहित्यका माध्यम बनी। जैन साधुओंने श्रावकोंके लिए साम्प्रदायिक साहित्यका बड़े उत्साहके साथ सर्जन किया और उसके लिए उन्होंने तत्कालीन लोक-भाषाका आश्रय लिया। वैष्णव भक्ति मार्गके कारण 'भागवत', 'रामायण' तथा 'महाभारत' की लोकप्रियता बढ़ती गई। उसके कारण देशी भाषाओंमें उनके अनुवादोंकी और कथा-श्रवणकी माँग बढ़ती गई। ऐसी परिस्थितिमें कथाकारों और पौराणिकोंने संस्कृतकी कथा-पोथियोंको अपने हाथोंमें रखा और उसकी कथा गुजराती भाषा द्वारा जनताको सुनाई। आख्यानकारोंने 'रामायण', 'महाभारत' और 'भागवत' से सामग्री ली और स्वतन्त्र व्याख्यानोंकी रचना की। ऐसे गाए जानेवाले आख्यानों और व्याख्यानोंका जनतामें काफी प्रचार किया गया। इस प्रकार इन लोगोंने जनताके धार्मिक संस्कारोंको जागरित रखा और उन्हें दृढ़ बनाया। नरसिंह मेहता और मीरा जैसे सन्त भी अपने पदों द्वारा अपने हृदयके भावोंको व्यक्त करते थे और लोक-मानसको भक्ति-जलसे निरन्तर सींचते रहते थे। मध्यकालीन गुजराती कवियोंने

इस प्रकार प्रजाके धार्मिक संस्कार-संरक्षकोंका काम किया। यह ठीक है कि मध्य-कालीन गुजराती साहित्य अधिकांशतया धार्मिक भावनाओंसे प्रेरित होकर ही लिखा गया था, परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि भौतिक रसोंकी उस कालमें बिलकुल चर्चा ही नहीं हुई। नर्मदके पूर्वकालका प्रथम लक्षण परलोकके प्रति प्रेम और इहलोकके प्रति अरुचि है, ऐसा कहते समय वीर, करुण और शृंगार रससे सरोबार हेमचन्द्रोल्लिखित अपभ्रंश दोहे, 'वसन्त विलास' जैसा जीवनका उल्लास व्यक्त करनेवाला शृंगारिक फागू काव्य, 'सन्देश रासक' जैसी एक मुसलमान कविकी विप्रलम्भ शृंगारकी मेघदूतानुसारी रचना, 'रणमल्ल छन्द' और 'कान्हड दे प्रबध' जैसे क्षत्रिय वीरोंके पराक्रम गानेवाले ऐतिहासिक वीर काव्य, भालण कृत कादम्बरी का सरस पद्यानुवाद और असायित, नरपत, गणपति, माधव और शामल जैसे कई कवियोंका मानव प्रेम, पराक्रम, कठिनाई, भलाई-बुराई आदि वर्णन करनेवाली अद्‌भुत सरस कहानियाँ, इस समग्र विशाल लौकिक साहित्यको भुलाया नहीं जा सकता।

मध्यकालीन गुजराती साहित्य अधिकांशतया पद्यबद्ध होनेके कारण वह आजकी तरह गद्य साहित्यकी भाँति साहित्यके स्वरूपोंकी विविधताको व्यक्त न कर पाये, यह स्वाभाविक ही है। फिर भी उसके द्वारा रचित विभिन्न प्रकारकी काव्य विविधता कम नहीं है। नरसिंह आदि भक्तिमार्गी वैष्णव कवियोंके उदयके पूर्वके ढाई शतकको अपनी स्फूर्तिमयी प्रवृत्तिसे भर देनेवाली जैन कविताने जिन काव्य-साहित्य-प्रकारोंका सर्जन किया है; उनमें रास, फागू, बारहमासी, कक्का, विवाहला, प्रबन्ध और वार्ता मुख्य हैं। धवल, अच्चरी, स्तवनों और सज्जायोंकी रचनाएँ भी काफी संख्यामें हुई है।

फागू और रास :

रास यानी सुगेय काव्य-प्रबन्ध। उसकी रचना प्रथम तो उर्मि काव्य-जैसी थी। परन्तु कालान्तरमें यह रचना आख्यान पद्धतिकी बन गई है। एक ही बन्धमें सारी रचना लिखनेकी अपेक्षा कडवे तथा भाषा नामक छोटे खण्डोंमें रास विभक्त होते थे और विभिन्न छन्दोंमें लिखे जाते थे। एक छन्दका विशेष नाम, मात्रामेल जातियोंका सामान्य नाम और नर्तकियों तथा युगलों द्वारा ताल और लयमें खेले जानेवाले गेय उपरूपक, इन तीनों अर्थोंमें विभिन्न समयोंमें रचित 'रास'के शब्दसे 'रास' शब्द आया, ऐसा माना जाता है। उपरूपकके रूपमें श्रीकृष्णकी रास क्रीड़ावाला रूप ही वह प्रकार हो, तो ताली और दाँडियेके तालवाले आजके गुजराती गरबा गरबियोंके प्रकारका वह पूर्वज ही है। इस रास नृत्यमें वह रचना रास है कि जिसमें जिसका गान हो। इस प्रकार रास शब्दका उपयोग काव्य प्रकारके लिए हुआ है। इस रचनाके प्रकारमें धार्मिक पुरुषों और आदर्श श्रावकोंके चरित्रों, तीर्थ-कथाओं, स्तवनों और उपदेशोंका तथा बादमें कहानियोंकी रचना

होनेसे गुजरातको मध्यकालमें काफी जैन-रास साहित्य प्राप्त हुआ है। रासका महत्व जैनी आख्यानोंके रूपमें और उसके जनक नहीं तो प्रेरक के रूपमें अधिक है।

फाग-फागू भी रासका ही एक प्रकार है। विस्तारमें वह छोटा है। इसलिए तथा उसका विषय नायक-नायिकाका शृंगार होनेके कारण ऊर्मि तत्व और रासाविष्कारका उसमें अच्छा प्रकाश है। उसमें बसन्त ऋतुकी प्रकृति-सौन्दर्यका वर्णन भी किया गया है। अतः उसे 'ऋतु काव्य' भी कहा जा सकता है। बसन्त वैभवको उद्दीपन विभाव बनाकर प्रेमी युगलके विप्रलम्भ-सम्भोग उभय शृंगारका निरूपण उसमें होता है। अतः उसे शृंगार काव्यका या प्रणय काव्य भी कहा जाता है। जैन साधुओं द्वारा नेमिनाथ और स्थूलिभद्र पर लिखे गए फागू स्वभावतया आरम्भके शृंगारकी पूर्णाहुति तप और उपशमसे करते हैं। जैनेतर कवियोंने भी फागू काव्य लिखे हैं, जिसमें श्रीकृष्ण विषयक रचनाओंमें भक्तिकी महिमा प्रवाहित है और 'बसन्त विलास' जैसे फागूमें शुद्ध शृंगार वर्णित है। फागू लिखनेवाले जैन और जैनेतर यह बताते हैं कि मध्यकालके कवि जन सहित्यिकी सरसताका विनियोग धर्मके लिए किस तरह करते थे।

'बारहमासी' यह ऋतु काव्य तथा प्रणय भक्ति काव्यका ही एक प्रकार है। उसमें बारह मास यानी सभी ऋतुओंका वर्णन आता है। वर्णन विरहिणी नायिका करती है, अतः उसमें विप्रलम्भ शृंगारका तत्व भी होता है। 'नेमिनाथ चतुष्पदिका' (ई. सन् १२४४) गुजराती भाषाका प्रथम बारहमासी काव्य कहा जाता है। उसके पश्चात् जैनेतर कवियोंने उस काव्य-प्रकारको काफी विकसित किया है। उनमेसे कई रचनाओंमे राधा या गोपियोके कृष्ण विरहके बारह माहका वर्णन है। नरसिंह, प्रेमानन्द, रत्नेश्वर, रत्ना, थाभण, प्रेमसखी, गिरधर और दयारामने ऐसे काव्य लिखे है। उनके उपरान्त भिलनीके राम सीताके गुरुके और किसानके भी बारहमासी काव्य लिखे गए हैं।

कक्का (बारहखड़ी) में "अ" से "ज्ञ" तकके अक्षरोंपर चौपाई-दूहेमें सुभाषित जैसी पंक्तियाँ लिखी जाती थीं। जैन साधुओं द्वारा उसका प्रारम्भ हुआ और जैनेतर कवियोंने उसे काफी विकसित किया। धीरा, प्रीतम और जीवणदासके ज्ञान कक्का तथा 'चंद्रहासाख्यान' (प्रेमानन्द) का कक्का उसके उदाहरण स्वरूप हैं। 'विवाहल' जैन साधुओं द्वारा लिखे गए गेय तथा वर्णनात्मक एवं चरित्रात्मक काव्य है। दीक्षा लेनेवाले तपस्वीके संयम, सुन्दरीके साथ हुए विवाहका उसमें वर्णन किया गया है। चच्चरी और धवल (धोल) गेय पदोंके प्रकार है। इन सबसे जैन कवियोंने प्रबन्ध अधिक लिखे हैं। प्रबन्ध यानी ऐतिहासिक और चरित्रात्मक वस्तुवाला आख्यान शैलीका कथात्मक काव्य। शुद्ध इतिहासके रूपमें इन प्रबन्धोंका महत्व किम्वदन्तियों तथा कवि कल्पनाके कारण कम है। परन्तु समकालीन लोक जीवनकी उसमें जीवन्त झाँकी है। कुमारपाल, विमल मन्त्री

तथा वस्तुपाल, तेजपालके चरित्र मध्यकालमें जैन साधुओंके लिए एक प्रिय काव्य विषय थे। रास, चरित्र और प्रबन्ध काव्योंमें कोई बहुत बड़ा भेद न रहनेके कारण बादमें ये तीनों नाम परस्पर एक दूसरेके लिए प्रयुक्त हुए हैं। इससे यह स्पष्ट है कि जैन साहित्यमें आख्यान पद्धतिके काव्योंके लिए "रास" शब्द एक प्रचलित नाम था।

कहानी साहित्य :

उपर्युक्त काव्य प्रकारोंकी अपेक्षा मध्यकालमें कहानी साहित्य अधिक लोकप्रिय बना है। उसके सर्जन और स्वरूप निर्माणमें जैनों और जैनेतर कवियोंका समान योग रहा है। अधिकांश कहानियाँ पद्यमें दुहा-चौपाई छन्दोंमें लिखी जाती थीं। और बीचमें कहीं-कहीं मार्मिक परिस्थितियोंके निरूपणके प्रसंगपर पद भी रखे जाते थे। मध्यकालीन कहानियोंमें वस्तु और संविधानकी दृष्टिसे कुछ कहानियाँ स्वयं सम्पूर्ण और लम्बी कहानियाँ थीं; उदाहरणस्वरूप 'हंसावली', 'सदयवत्सकथा', 'मारु-ढोला', 'चउपई', 'नन्दबत्रीसी', 'मदनमोहना' इत्यादि। और कुछ कहानियाँ एक ही सूत्रमें गूँथी गई कहानी मालाएँ थीं। 'सिंहासन बत्रीसी', 'वैताल पच्चीसी', 'पञ्चदण्ड', 'सूडाबहोतरी' इत्यादि उसके उदाहरण है। सम्पूर्ण लम्बी कहानियोंमें भी उपकथाओं और दृष्टान्त कथाओंका समावेश होता था। कई बार नायक-नायिकाके दुःखों और साहसोंसे ही विविध कहानियोंमें रस उत्पन्न किया जाता था। कहानियोंमें नीति, व्यवहार दक्षता, सदाचार इत्यादिका उपदेश देनेवाले सुभाषित और बुद्धि विनोदपरक समस्याएँ मध्यकालीन कहानियोंके ज्ञान और मनोरञ्जनको बढ़ाती थीं। विषयकी दृष्टिसे देखा जाए तो मध्यकालकी अधिकांश कहानियाँ प्रेम कथाएँ थीं; उदाहरणस्वरूप–'हंसाउली', 'माधवानल-कामकन्दला', 'मारु-ढोला', 'कामावती' इत्यादि। नायक-नायिकाके प्रेमोदयके लिए चक्षुराग, स्वप्न, समस्या इत्यादि द्वारा कौतुकपूर्ण परिस्थितिकी कल्पना की जाती थी और प्रेमोदयके बाद विघ्नों और मुसीबतों द्वारा उनके विरहका निरूपण करके अन्तमें मिलन सुखसे कहानियोंकी पूर्णाहुति होती थी। विरह और आपत्तिके बीचके समयका उपयोग उनके परिभ्रमण, साहस, चतुराई, परोपकार इत्यादिके लिए तथा विप्रलम्भ शृंगारके निरूपण द्वारा उनके प्रेमकी उत्कटताकी अभिव्यक्तिके लिए होता था। शृंगारके बाद 'वीर' और 'अद्‌भुत' ये मध्यकालीन कहानीके प्रिय रस थे। वीर विक्रमके पर दुःख भञ्जक पराक्रमोंकी कहानियोंमें इन दोनों रसोंका अधिक उपयोग हुआ है। अद्‌भुत-रसका उपयोग खुलकर होता था। शकुन, अपशकुन, मन्त्र-तन्त्र, कमल-पूजा, काशी का आरा, स्वप्न, इन सबके सम्बन्धमें तत्कालीन लोक जीवनमें प्रचलित मान्यताओं का भी इन कहानियोंमें वर्णन हुआ है। इन कहानियोंके कथानक पुरानी कहानी परम्परासे लिए जाते थे। अतः कथाकी घटनाओंमें बहुधा समानता है।

केवल कवि-प्रतिभा और निरूपण शैलीको लेकर ही कहानियोंमें विशेषता दिखाई देती है। परन्तु मध्यकालीन कहानीकार, कवि अपनी प्रतिभाको अधिक सफलतापूर्वक व्यक्त नहीं कर सके हैं। उनका प्रधान लक्ष्य कविता नहीं, कहानी था। मध्यकालमें ऐसा कहानी साहित्य १४ वें शतकसे १८ वें शतक तक जैनों तथा जैनेतरों द्वारा अधिक पैमानेमें लिखा गया है। जन-हृदयमें स्थित सनातन शिशुको अद्‌भुत रसिक कल्पना कथाके कहानी-रसका पान कराकर, पात्रोंके प्रेम, साहस इत्यादिके साथ समरसताका अनुभव करवाकर, लोगोंकी अक्रिया अप्रयुक्त रस-पराक्रम-वासनाको कल्पना मार्गसे मोक्ष दिलवाकर, उनके जीवनमें लगातार रस-सिञ्चन करनेकी सेवा मध्य-कालीन कहानीकारोंने कम नहीं की है।

पौराणिक कथावस्तु :

मध्यकालीन गुजराती साहित्यका ऐसा ही दूसरा काव्य-प्रकार आख्यान है। ऐसा लगता है जैनोंके रास-रासा उसके लिए प्रेरणा रूप बने होंगे। ब्राह्मण वर्गने पुराणोंमेंसे भगवद् लीला और भक्तोंकी चरित्र कथाओंके लिए उसका उपयोग किया है। जैन रासाओंकी तरह गेय ढालोंमें अर्थात् देशियोंमें लिखे गए और कडवोंमें विभाजित इन आख्यानोंकी कथावस्तु मुख्यतः रामायण, महाभारत, भागवत् आदि ग्रन्थोंसे और कभी-कभी नरसिंह मेहता जैसे लोक विख्यात भक्तोंके जीवनसे ली गई है। वस्तु और पात्र दोनों विख्यात थे ही। अतः आख्यानकारोंको उसकी अभिव्यक्तिमें ही अपनी विशेषता बतानी थी। प्रेमानन्दने 'रणयज्ञ' में रावण-कुम्भकर्णको भक्तके रूपमें उपस्थित किया है, तो 'सुदामा-चरित्र' में सुदामाको एक सामान्य ब्राह्मण और 'अभिमन्यु-आख्यान' में श्रीकृष्णको खलनायकके रूपमें वर्णित किया गया है। इसीलिए मध्यकालीन आख्यान स्वतन्त्र रचनाओंका रूप ले पाते थे। लेखकोंने वस्तुका ढाँचा ही पुराणोंसे ही लिया है। उसमें रक्त, मांस, और प्राण अपने जमानेके डालते थे। इससे पौराणिक पात्र आख्यानकारोंके हाथों सजीव, लोकमान्य गुजराती पात्र बन गए हैं।

१५ वें शतकसे आरम्भ हुए इस काव्य-प्रकारने उसके बादके दो शतकोंमें क्रमशः काफी विकास किया और १७ वें शतकमें प्रेमानन्द जैसे कवि कलाकारको पाकर विकासके उच्च शिखरको प्राप्त किया। वैष्णव भक्ति मार्गने और आख्यानोंको गाकर सुनानेवाले कथाकारों और माणभट्टों*ने इस काव्य-प्रकारको अधिकाधिक लोकप्रिय बनानेमें विशेष योग दिया है। हमारे धर्म, तत्वज्ञान और संस्कृतिके उत्तम अंशोंका मित्रकी तरह उपदेश देनेवाली कथा-आख्यायिकाओं द्वारा जन-हृदयमें

---

* **माणभट्ट**—हाथमें छल्ले पहनकर ताँबेकी गगरी बजाते हुए गानेवाले पौराणिक कथाकार।

प्रवेश पानेकी पुराणोंने जो सेवा की है, वही सेवा आख्यानोंने मध्यकालमें की है और प्रजाके धर्म-संस्कारको जाग्रत रखा है।

रास-प्रबन्ध, कहानी और आख्यान जैसी लम्बी कथात्मक काव्य-रचनाओंकी तरह गुजरातमें मध्यकालमें पद-साहित्य भी काफी लिखा गया है। जिस प्रकार पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दीमें नरसिंह, मीरा, भीम, भालण, जनार्दन, केशवदास जैसे कवियोंकी कविता पदके साँचेमें ढली है और वे पद कविताका प्रचलन विशेष रूपसे दिखाते हैं, वैसे ही शामलसे लेकर दयाराम तकके कवि भी बहुधा पद-कवि ही हैं। पदोंमें नरसिंह मेहताकी प्रभातियाँ और अन्य पद, मीराके भक्ति गीत, धीराकी काफियाँ, भोजाके चाबखे, आरतियाँ, हालरडा (लोरियाँ), भजन, गरबी इन सबका समावेश हो सकता है। दयारामके भक्ति-गीतोंको गरबियाँ कहा जाता है। ऐसे ही पद दयारामके पहले शान्तिदास, प्रीतम, राजे, रणछोड़. गिरधर आदिने लिखे हैं और १६ वें शतकमें भालणने भी ऐसी ही रचनाएँ की हैं। वास्तवमें छोटी और ऊर्मि गीत सभी लक्षणोंवालीमें ये रचनाएँ श्री कृष्णलीला गानके लिए ही लिखी गई है। गरबा गरबीसे लम्बा और कभी-कभी कथात्मक और वर्णनात्मक रचनाएँ होती है और वे नवरात्रिमें दुर्गा माताजीकी उपासनाके दिनोंमें गाई जाती हैं। इसकी रचना वल्लभ मेवाड़ा नामक एक शक्तिके उपासकने की और इन्हें गाकर अधिक लोकप्रिय बनाया। इसका विशेष सम्बन्ध शक्ति पूजासे है। गरबी और गरबा रासकी तरह वर्तुलाकार गतिमें घूमते हुए गुजरातके स्त्री-पुरुष गाते हैं। ऐसी रचनाओंका मध्यकालके साहित्यमें विशिष्ट स्थान है।

प्राचीन गुजराती कविता :

१५ वीं शताब्दी तक के गुजराती साहित्यकी गण्य कृतियोंमें हेमचन्द्र-सूरि द्वारा अपने प्राकृत व्याकरणमें अपभ्रंश विभागमें उल्लिखित वीर-शृंगार-रसिक और सुभाषितात्मक अपभ्रंश दुहा, सालिभद्रसूरि कृत 'भरतेश्वर-बाहूबलि रास', 'बारहमासीकाव्य', 'नेमिनाथ चतुष्पदिका', 'वसन्त विलास', 'फागु', 'त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध' की रूपक कथा, हंसाउली और सदयवत्सचरितकी कहानियाँ, ऐतिहासिक वीर काव्य, रणमल्ल छन्द और विप्रलम्भ शृंगारके मुसलमान कवि द्वारा रचित 'सन्देश रासक' इत्यादि कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। १५ वें तथा १६ वें शतककी साहित्य-समृद्धिमें नरसिंह मेहता और मीराबाईकी प्रेम लक्षणा भक्तिकी कविता, पद्मनाभकृत वीरकाव्य 'कान्हडदे प्रबन्ध' भालणका 'कादम्बरी' का सुन्दर पद्यानुवाद, 'नलाख्यान' तथा 'दशमस्कन्ध', नाकरके आख्यान, नलपति और गणपतिकी क्रमश: 'नन्दबत्रीसी' और 'माधवानल-कामकन्दला' की कहानियाँ जैन कवि कुशललाभकी 'मारु ढोला' तथा माधवानल-कामकन्दलाकी और नयन सुन्दर की 'रूपचन्दकुंवर रास' की कहानियाँ, नयन सुन्दरका 'नलदमयन्ती रास'

तथा लावण्य समय कृत 'विमल-प्रबन्ध' ये सब उल्लेखनीय हैं। उसके बादके समयमें नरसिंह तथा अखाकी वेदान्त कविता, अखाके छप्पे, प्रेमानन्दके आख्यान, रत्नेश्वर और रत्नाके महीने, शामलकी कहानियाँ, शिवानन्द स्वामीकी आरतियाँ, वल्लभके गरबा, कबीर पन्थके साधुओंकी भजनवाणी, दयारामकी गरबियाँ और स्वामीनारायण सम्प्रदायके साधुओंकी भक्ति वैराग्यकी कविता तथा 'वचनामृत' इत्यादि गद्य उल्लेखनीय हैं। मध्यकालीन गुजराती साहित्य काव्य-प्रकार, काव्य-उपजीव्य और कम-अधिक शक्तिवाले कई कवियोंके वैविध्यसे भरा-पूरा था। अब तकके मुद्रित साहित्यकी अपेक्षा हस्तलिखित पोथियोंमें संग्रहीत मध्यकालीन गुजराती साहित्य विपुलताकी दृष्टिसे कम नहीं है।

शुद्ध कवित्वकी दृष्टिसे देखा जाए तो मध्यकालके कवियोंमें पद, आख्यान, प्रबन्ध, कहानियाँ, इत्यादि लिखनेवाले कोई ऊँचे कवि नहीं हैं। पदोंमें नरसिंह मेहता, मीराबाई और दयारामकी कवि-प्रतिभा अन्य कवियोंमें कम दिखाई देती है। इसी तरह आख्यानकार तो कई हैं, परन्तु उनमें समर्थ कवित्व शक्ति तो केवल प्रेमानन्द में ही है। कहानी-लेखकोंमें शामल और ज्ञानाश्रयी कवियोंमें अखा अग्रणी हैं। परन्तु कवियोके रूपमें ऊपर बताये चार नामोंके साथ इनके नाम नहीं रखे जा सकते। अलबत्ता, मध्यम श्रेणीकी कवित्व शक्ति प्रदर्शित करनेवाले कुछ कवियोंकी कोई-कोई कृतियाँ कविताके रूपमें आस्वाद्य कोटिकी बन पाई है; फिर भी गुजरातको अपने मध्यकालीन साहित्यपर गर्व है।

अर्वाचीन गुजराती साहित्य :

ई. सन् १८५० के बादका गुजराती साहित्य अपने पूर्वके आठ सौ वर्षोंके साहित्यकी अपेक्षा अपने काव्य-उपजीव्यमें, कथन-शैलीमें, साहित्य-प्रकारोंमें तथा उस सर्जकोंकी जीवन दृष्टि तथा साहित्य भावनामें कोई और ही प्रकाश फैलाता है। कुछ अपवादोंको छोड़कर पुराना साहित्य बहुधा धार्मिक साहित्य था। अर्वाचीन साहित्य को इह जीवनमें रस है। पुराने साहित्यमें ईश्वरका स्थान सर्वोपरि था। अर्वाचीन साहित्यमें वह स्थान मानवने प्राप्त किया है। पुराने साहित्यमें गद्यका उपयोग अति अल्प हुआ है। अर्वाचीन साहित्यने गद्यको बढ़ाया है, विकसित किया है। उसने नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध इत्यादि नए साहित्य-प्रकार भी प्रस्तुत किए हैं। साहित्य केवल धर्म, नीति, वैराग्य इत्यादि ज्ञानका साधन नहीं, परन्तु वह अपने ही लिए उपासना करने योग्य साध्य और वाणीकी आनन्दमयी कला है। यह दृष्टि अर्वाचीन गुजराती साहित्यमें है, जो मध्यकालीन साहित्यमें नहीं दिखाई देती।

पश्चिमका प्रभाव :

देशमें ब्रिटिश शासनने जो नई हवा पैदा की, वह भी इस परिस्थितिके लिए उत्तरदायी है। विकासकी भौतिक सिद्धियोंको देखकर, उसका उपयोग करने-

वाले अँग्रेजोंके प्रत्यक्ष सम्पर्कमें आनेसे, तथा उन्होंने जो शिक्षा देना शुरू किया उससे उनके साहित्यका जो परिचय हुआ, उससे हमारी प्रजाको नया दर्शन हुआ और हमारे लिए अचलायतनकी खिड़की खुल गई। प्रमाद तथा निष्क्रियताको धर्म तत्व ज्ञान द्वारा उपदिष्ट आन्तर निवृत्ति मान लिया गया और कर्म सिद्धान्तसे पुरुषार्थके स्थानपर अकर्मण्यता तथा निर्वीर्य प्रारब्ध परायणता और अल्प सन्तुष्टिमें दबा हुआ, प्रजाका रुका हुआ जीवन जल पुनः प्रवाहित हो उठा। वह अपने भौतिक जीवनको बेहतर बनानेकी अभिलाषिनी और नए प्रकाशके लिए जिज्ञासु बनी। नव स्फूर्तिके उदयके समयपर विद्यालयों, पुस्तकालयों, मण्डलियों, सभाओं, मुद्रणालयों, समाचार-पत्रों, व्यापार धन्धोंसे सारा वातावरण जाग्रत हो उठा। कलकत्ता, मद्रास, बम्बईमें सन् १८५७ ई. में विश्वविद्यालय प्रस्थापित हुए और गुजरातमें नवयुगका आरम्भ हुआ। इस नई हवामें अर्वाचीन गुजराती साहित्यका जन्म हुआ।

अँग्रेजी शिक्षा :

इस अभिनव युगकी चेतनाके सन्देशवाहक, साहित्यको तीव्रगामी बनानेवाले सिद्ध हुए। मिशनरियों तथा उनके बाद स्थापित होनेवाली पाठशालाओंने व्यवस्थित शिक्षा द्वारा प्रजाके भौतिक ज्ञानका सीमा-विस्तार किया। पाठ्य पुस्तकों द्वारा गद्यकी प्रारम्भिक रचनाओंमें उससे सहायता मिली। अभिनव शिक्षण प्राप्त करनेवाले युवकोंके मण्डल (जैसे बम्बईकी "बुद्धि वर्द्धक सभा") स्थापित हुए। उस समय प्रसंगोचित पढ़े जानेवाले भाषणों, विज्ञापन द्वारा मँगाये जानेवाले ईनामी निबन्धों, नवनिर्मित रंगभूमि द्वारा प्रेरित नाट्य लेखनों, मुद्रण यन्त्र द्वारा समाचार पत्रोंका प्रकाशन एवं ग्रन्थ प्रकाशनकी सुविधाओंने गुजराती गद्यको विकसित करनेमें अधिक सहायता पहुँचाई है। उस समय बम्बई विश्वविद्यालयकी स्थापनासे अर्वाचीन गुजराती साहित्यको पोषण मिला और उसके स्वरूप निर्माण पर प्रभाव पड़ा। अँग्रेजी भाषा और साहित्यके अध्ययनके साथ-साथ इस देशकी प्राचीन भाषा संस्कृत तथा फारसीका अध्ययन भी विद्यापीठकी पद्धतिपर आरम्भ हुआ। इन तीनों भाषाओंके साहित्योंका चित्तपर जो संस्कार पड़ा था, वह दृढ़ बना। यह स्वाभाविक था कि इस प्रकारकी शिक्षा पानेवाले वर्गको स्वभाषामें अनुवाद तथा अनुकरणकी प्रेरणा मिले। संस्कृत काव्य, नाटक आदिकी एक-एक कृतिके एकसे अधिक गुजराती अनुवाद भिन्न-भिन्न साहित्यकारों द्वारा प्रस्तुत किए गए। बालाशंकरने हाफिजकी गजलोंका गुजरातीमें अनुवाद किया है। अनेक अनुवादकोंने अँग्रेजी तथा अँग्रेजी द्वारा यूरोपीय साहित्य रचनाओंका अनुवाद, एवं हिन्दी, बंगला, मराठी आदि भारतीय भाषाओंकी श्रेष्ठ रचनाओंका स्वाद गुजरातको चखाया है।

अर्वाचीन गुजराती साहित्यकी मौलिक रचनाओंपर संस्कृत, फारसी तथा अँग्रेजीका प्रभाव पर्याप्त मात्रामें पड़ा है। संस्कृतके काव्य साहित्यके परिचय तथा

परिशीलनका परिणाम यह हुआ कि मध्यकालीन गुजराती कवियोंकी अपेक्षा दलपतराम तथा नर्मदाशंकरने और इन दोनोंकी अपेक्षा नरसिंहराव, बालाशंकर, मणिलाल, "कान्त", गोवर्धनराम, हरिलाल, भीमराव, बलवन्तराव, कलापी आदि तथा उनके आजकलके अनुयायियोंने कवितामें संस्कृत वर्ण वृत्तोंका उपयोग अधिक मात्रामें किया है। दलपतराम तथा नर्मदाशंकरके बादवाले कवियोंकी काव्य भाषामें (Diction) तथा पण्डितयुगके गद्य लेखकोके गद्यमें अधिक मात्रामें संस्कृत मयताके दर्शन होते हैं। इस नए युगमें बहुत कुछ सीख-सिखाकर अभिव्यक्त करते समय शब्दोंके अभावमें अथवा अनेक अँग्रेजी शब्दोके पर्यायवाची शब्द देते समय संस्कृतकी शरण लेनेकी प्रवृत्ति स्वाभाविक थी। प्रारम्भिक कालके गुजराती नाटकों-पर संस्कृत नाटकोंका प्रभाव हम नान्दी, सूत्रधार, भरत वाक्य, विष्कम्भक, प्रवेशक आदिकी योजनामें, बीच-बीचमें रखी जानेवाली श्लोकात्मक कवितामें तथा अंकोंकी संख्यामें देख सकते है। अपनी रचना तथा अनेक अनूदित सामग्रियोंमें मणिलाल द्विवेदीका "कान्ता", रमणभाई नीलकण्ठका "राई नो पर्वत" रसिकलाल परीख द्वारा लिखित "शर्विलक" संस्कृत नाटकोंका अनुसरण करते हैं। प्रेमानन्दके रचे हुए तीन नाटक भी संस्कृत नाट्य शास्त्र तथा नाटकोंके किसी अर्वाचीन लेखक द्वारा लिखे गए-से प्रतीत होते हैं। यह सर्वविदित है कि संस्कृत महाकाव्योंके आदर्शोंके अनुसरणपर "पृथ्वीराज रासा" तथा "इन्द्रजीत वध" काव्य लिखे गए हैं। काव्यके रूप, रस, अलंकार आदिके अध्ययनने अर्वाचीन गुजराती काव्यकी भाषाको परिशुद्ध किया। उससे साहित्य विवेचनकी दिशामें भी अच्छी सहायता मिली है। संस्कृतके अध्ययनने वेद, उपनिषद्, वेदान्त, दर्शन और पुराण आदिका प्रत्यक्ष और गहरे अध्ययनको परिपुष्ट कर अर्वाचीन लोगोंका स्वधर्म-ज्ञान स्पष्ट बनाया। उससे प्रारम्भिक कालके विध्वंसक, पाश्चात्यानुसारी सुधारके प्रति मुग्धतापूर्ण आकर्षण कम हुआ और उसके स्थानपर पूर्वाभिमुखता, स्वसंस्कृति-निष्ठा, क्रमशः सन्तुलन तथा समन्वय दर्शनका आगमन हुआ। वही गोवर्धनराम त्रिपाठी, मणिलाल द्विवेदी तथा आनन्दशंकर ध्रुवका प्रेरक स्रोत बना।

चौदहवीं शतीसे ही गुजरातको फारसीसे परिचय होने लगा था। रण-छोड़लाल दीवान जैसे लेखकोंने फारसीमें पुस्तक भी लिखी है। यूनिवर्सिटीने फारसी साहित्यके व्यवस्थित अध्ययनका अवसर दिया। फलस्वरूप फारसी तथा उर्दू कविताका जो परिचय बढ़ा, उससे गुजराती कवितामें इश्क मिजाजी तथा इश्क हकीकी कविताओं और गजलोंको लिखनेकी प्रवृत्ति बढ़ी। बालाशंकर, मणिलाल, देरासरी, कलापी, सागर आदिकी गजलोंको तो बहुत ही प्रसिद्धि मिली। साथ ही साथ गोवर्धनराम, कान्त, न्हानालाल, बोटादकर सरीखे कवियोंने भी फारसी छन्दमें कविताएँ लिखी हैं। गाँधीयुगके अन्तिम ढाई दशकोंमें भी गजल लेखकोंका एक पृथक वर्ग बन गया है तथा मुशायरोंने अधिक प्रशंसा प्राप्त की है।

पाश्चात्य साहित्यकी देन :

अँग्रेजी साहित्य नित्य विकसित तथा स्फूर्तिशील था। उसके द्वारा अन्य पाश्चात्य भाषाओंके साहित्यका परिचय भी धीरे-धीरे बढ़ सकता था। इसलिए उसका प्रभाव अर्वाचीन गुजराती साहित्यपर उत्तरोत्तर बढ़ चला। पण्डितयुगकी समाप्तिके बाद तो यह प्रभाव और भी बढ़ गया है और गुजराती साहित्यने पाश्चात्य साहित्यकी प्रगतिसे ताल मिलाया है।

अर्वाचीन गुजराती साहित्यपर संस्कृत तथा फारसी साहित्यकी अपेक्षा अँग्रेजी साहित्यका विशेष प्रभाव पड़ा है। यूनिवर्सिटीकी शिक्षा प्राप्त करनेवाली पीढ़ी अँग्रेजी कविताके सम्पर्कमें आई। फलतः अँग्रेजीका संस्कार लेकर बाहर निकलने वालोंने गुजरातीमें वैसी ही कविता लिखनेका प्रयत्न किया। हम नरसिंहरावकी "कुसुममाला" को उसका परिणाम कह सकते हैं। बलवन्तराय ठाकोरने गुजरातीमें 'सुनीत' (Sonnet) लिखे। वह प्रयत्न काफी सफल हुआ और लोकप्रिय बना। अँग्रेजी कविताके "ब्लेंक वर्स" को गुजराती पद्य-रचनामें स्थान देनेका प्रयास ठाकोर, केशवलाल ध्रुव, न्हानालाल और खबरदार द्वारा हुआ। अँग्रेजी कविताके अध्ययनसे प्रेरित होनेके कारण खण्डकाव्योंपर अँग्रेजी प्रसंग काव्योंका तथा महाकाव्योंपर पश्चिमके 'एपिक' (Epic) का प्रभाव दृष्टि-गोचर होता है। हम गुजरातीमें गत शताब्दीके अन्तर्गत प्रकृति, देशाभिमान और आत्मनिष्ठ कविताको जो इतने अधिक परिमाणमें लिखा हुआ पाते हैं, ईश्वरको छोड़कर प्रणय, प्रकृति और मानवकी अनेक ऐहिक भावानुभूतिको कवितामें जो आदर-णीय स्थान मिला; यह सब अँग्रेजी कविताका ही प्रभाव कहा जाएगा। अर्वाचीन गुजराती गद्यपर अँग्रेजी गद्यका प्रभाव भी कम नहीं है। गत शताब्दीमें ही गद्यको साहित्यिक प्रतिष्ठा मिली, वह विपुल मात्रामें लिखा गया और विकसित हुआ। अँग्रेजी साहित्यके प्रभावसे ही नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, निबन्धिका, चरित्र आदि गद्यांगोंका आगमन गुजरातीमें हुआ। गुजरातीके इन सभी साहित्यांगोंके शिल्प-विधानपर पश्चिमके उसी साहित्यांगके स्वरूप और शिल्प-विधानके अनुसरण-की छाप स्पष्ट परिलक्षित होती है। प्रारम्भिक कालमें गुजराती नाटकोंपर लोकरञ्जक नाट्य 'भवाई' का प्रभाव पड़ा और उससे भी अधिक संस्कृत नाटकका प्रभाव था। किन्तु उसके बादमें लिखे जानेवाले नाटकोंसे लेकर आजकलके एकांकियों तकके विकासमें अँग्रेजी और पश्चिमके नाटकोंका प्रभाव दिखाई देता है। गुजराती साहित्यमें समालोचनाका प्रारम्भ अर्वाचीन युगमें हुआ है। उसपर संस्कृत टीकाकारोंकी विवेचन पद्धतिका प्रभाव नहीं पड़ा, वह पाश्चात्य साहित्य शास्त्र और विवेचन सिद्धान्तोंसे ही प्रभावित है।

कहानी, नाटक, उपन्यास इत्यादिका कला स्वरूप पश्चिमकी देन है। इसलिए उसका विवेचन भी पाश्चात्य पद्धतिसे हो, यह स्वाभाविक ही था। अर्वाचीन

गुजरातकी काव्य-भावना, साहित्यिक दृष्टि तथा रस-रुचिको सँवारनेमें पाश्चात्य साहित्य-मीमांसाका विशेष हाथ है।

अभिनव प्रयोग :

विश्वविद्यालयकी शिक्षासे संस्कृत, फारसी और अँग्रेजी साहित्यने अर्वाचीन गुजराती साहित्यपर अपना प्रभाव अवश्य डाला, परन्तु प्राचीन साहित्यसे उसका बिलकुल विच्छेद नहीं हुआ। प्राचीन पदोंका प्रवाह अब भी दलपतरामकी गरबियों और धोलमें, नर्मदके पदोंमें, त्रिभुवन (मस्त कवि) से लेकर आज तकके कवियोंके भजनोंमें, न्हानालाल और बोटादकरके रास और गीतोंमें तथा मेघाणीके लोकगीतोंकी पद्धतिके अनुसरणमें नए ढंगसे अविच्छिन्न बह रहा है। दलपतरामके "वेन चरित्र" तथा नरसिंहरावके "बुद्ध चरित्र" में प्राचीन कथा-पद्धतिका प्रयोग हुआ है। कवि न्हानालालके "हरिसंहिता" काव्य ग्रन्थमें संस्कृत, पुराण तथा मध्यकालीन गुजराती कथा शैलीका अनुसरण है। प्राचीन भक्तिपूर्ण कविताकी अनुगूंज दलपत, नर्मद, भोलानाथ, नरसिंहराव, रमणभाई, कान्त, न्हानालाल, खबरदार, सुन्दरम्, पूजालाल आदि कवियोंकी कविताओंमें सुनाई पड़ती है। आज भी छोटम, ऋषिराय, समारशा, शंकर महाराज और दुला काग जैसे अनेक भजनीक कवियोंकी रचनाओंमें मध्यकालीन भक्ति, वैराग्य, वेदान्तकी धारा प्रवाहित है। शामलकी नीति परक कविताओं जैसी ही कविताएँ दलपतरामने लिखी हैं और महीपतरामने अपनी कथाओंसे मर्मवार्ताओंकी रचना करके मानो लोक-कथाका प्रवाह नए युगमें कुछ समय तक चलते रहने देनेका प्रयत्न किया है। प्रारम्भिक कालके गुजराती नाटकोंमें भवाईका कुछ प्रभाव दिखाई देता है।

संसार सुधार युग :

उपर्युक्त प्रभावोंको प्रकट करनेवाले पिछले ग्यारह दशकोंके गुजराती साहित्यको सामान्यतः तीन भागोंमें बाँट सकते हैं। प्रेरक बल तथा प्रधान लक्षणोंको ध्यानमें रखते हुए प्रथम विभागको 'संसार सुधार युग' कहते है। इस युगके अग्रगण्य प्रभावशाली साहित्यकारोंके नामोंसे सम्बन्धित परिचय देना हो तो हम इसे नर्मद युग अथवा दलपत-नर्मद युग कह सकते हैं। इसके समयकी अवधि सन् १८५० से नर्मदके देहावसान (सन् १८८६) तक कही जा सकती है। इस कालका साहित्य प्रजा जीवनमें व्याप्त स्फूर्ति तथा जागृतिके वातावरणमें लिखा गया है। भौतिक जीवनको सुखी, समृद्ध बनानेकी अभिलाषा उत्पन्न करनेवाली नई शिक्षाने रूढ़िग्रस्तता, अन्ध-विश्वास, निरक्षरता, बाल-विवाह, जाति-बन्धन, स्त्रियोंका अनिवार्य वैधव्य, समुद्रपारीय यात्राका प्रतिबन्ध तथा ऐसी ही अन्य बातोंको

प्रगतिके लिए बाधक माना और इनके निवारणके लिए आवाज ऊँची की। इस युगका साहित्य अधिकांशतः इसी उद्‌घोषका वाहक है।

नर्मद जिस प्रकार जीवनमें सुधारके सेनानी थे उसी प्रकार साहित्यमें भी सुधारक कवि बने। दलपतराम लोक-शिक्षण तथा सुधारके कवि थे। सुधारकी बाइबिल सरीखी "नर्म कविता" दलपतराम कृत "वेनचरित्र", नवलराम कृत "बाल लग्न गरबावली", महीपतराम कृत कहानी "सासु बहुनी लडाई", रणछोड़-भाईका "जयकुमारी विजय", तथा "ललिता दुःख दर्शक" नाटकमें सुधारकी भावना साँस लेती है। उस कालमें मानो सुधार ही साहित्यका प्रेरक स्रोत बन गया था। यदि लोक शिक्षणका वाहन अथवा माध्यम बननेवाला यह साहित्य उद्‌देश्य परक बना हो और उसमें कलात्मकता कम पाई जाती हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है। इस युगके साहित्य-निर्माताओंमें दलपतराम सरीखे अँग्रेजी शिक्षासे अछूते रहनेवाले तथा नर्मद, नवलराम सरीखे अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त, किन्तु विश्वविद्यालयकी उपाधिसे रहित लेखकोंमें जितना उत्साह दिखाई देता है उतनी गम्भीरता नहीं नजर आती। नाटक, उपन्यास आदि साहित्यांगोंपर कला-विधानकी दृष्टिसे उनका हाथ अच्छी तरह सधा हुआ नहीं प्रतीत होता।

इस युगमें साहित्य विकासकी दृष्टिसे दलपतरामकी उपदेशात्मक छन्द शुद्ध सभारंजनी कविता, नर्मदकी प्रकृति, प्रणय, देशाभिमानकी कविताएँ, नर्मद, नवलराम और मनसुखरामके निबन्ध; नर्मद, नवलराम और नन्दशंकरका गद्य, रणछोड़भाई और नवलरामके नाटक, नन्दशंकरका "करणघेला" नामका प्रथम गुजराती ऐतिहासिक उपन्यास, नवलरामकी समालोचना विशेष उल्लेखनीय हैं।

पण्डित युग :

इसके पश्चात पण्डित युग आरम्भ होता है। यदि इस युगका नामकरण महान् साहित्यिक प्रतिभाके नामपर किया जाए तो इसे गोवर्धन युग कहेंगे। इस युगके साहित्य-निर्माताओंमें से अनेक (हरिलाल, केशवलालध्रुव, कान्त, रमणभाई, नरसिंहराव, आनन्दशंकर, बलवन्तराय, मणिलाल आदि) बम्बई विश्वविद्यालयके उपाधिधारी थे। इस युगमें विश्वविद्यालयकी शिक्षा समाप्त कर निष्ठापूर्वक अध्ययन-मननमें रत रहनेवाले, वाङ्मय सेवी, सरस्वती भक्त भी अनेकानेक हुए हैं। इसीलिए इस युगकी चिन्तन-धारामें पाण्डित्य, परिपक्वता, गम्भीरता, सूक्ष्मता और व्यापकता पिछले युगसे अधिक आई। काव्य-भावना तथा कला-दृष्टिसे विकसित होनेपर साहित्यिक रचनाओंमें कलात्मकता, रसमयता और साहित्यिक गहनता आई। इसीलिए कविता तथा गद्यकी भाषा अधिकाधिक शिष्ट, प्रौढ़, रसान्वित, मार्मिक और अर्थवाही बनी। सन् १८८६ में नर्मदका अवसान हुआ। उसके चार वर्ष बाद ही नरसिंहरावका काव्य संग्रह "कुसुम माला", गोवर्धनरामका

उपन्यास "सरस्वती चन्द्र" (प्रथम भाग) कान्तके तीन प्रसिद्ध खण्डकाव्य, गोवर्धन कृत "स्नेह मुद्रा" और केशवलाल ध्रुवका मुद्राराक्षसका अनुवाद मेलनी मुद्रिका इत्यादि प्रकाशित हुए। इस प्रकार नर्मदके देहावसानके बाद पण्डित युगका प्रारम्भ माना गया है। इस युगके लेखकोंमेंसे अनेकने सन १८८० के आस-पाससे लिखना आरम्भ किया था।

गत शताब्दीमें अँग्रेजीके रोमाण्टिक कवियोंके प्रभावसे लिखी गई नर्रासिंहराव, कान्त, बलवन्तराय, कलापी तथा न्हानालालकी कविताएँ, मणिकलाल द्विवेदी तथा केशवलाल ध्रुवके संस्कृत नाटकोंके अनुवाद, बालाशंकर, मणिलाल तथा कलापीकी गजलें, विद्वत्ता, देश-भक्ति, विचारकता, सर्जकताका माननीय दर्शन करानेवाले गोवर्धन त्रिपाठीका चार भागोंमें महाकाय उपन्यास "सरस्वती चन्द्र", कान्त रचित "वसन्त विजय" आदि तीन अपूर्व खण्डकाव्य, पूर्व और पश्चिम दोनोंके नाट्य-कलाओंसे समन्वित मणिलाल कृत "कान्ता" तथा रमणभाई कृत "राई नो पर्वत" नाटक, मणिलालके निबन्ध, मणिलाल, रमणभाई, आनन्दशंकर एवं नर्रासिंहरावका साहित्य विवेचन, मणिलाल, रमणभाई तथा आनन्द शंकरका धर्म चिन्तन; भीमराव, दौलतराव, तथा कलापीके महाकाव्य, केशवलाल ध्रुव, मणिलाल, रमणभाई, आनन्दशंकर आदिके व्यक्तिगत विशिष्टता सम्पन्न गद्य, हास्यरसको गुजरातकी एक स्मरणीय रचना "भद्रंभद्र", केशवलाल तथा नर्रासिंहरावका भाषा शास्त्र विषयक कार्य, साहित्यकारों तथा चिन्तकोंके लिए एक भव्य आदर्श उपस्थित करनेवाला गोवर्धनराम रचित चिन्तन ग्रन्थ, "साक्षर जीवन" आदि रचनाएँ गुजराती साहित्यके इस युगको उज्ज्वल बनाती हैं। पण्डित युग पिछली शताब्दीमें ही समाप्त नहीं हो गया, अपितु यह एक शताब्दीसे दूसरी शताब्दीमें भी बढ़ता रहा। पण्डित युगके नर्रासिंहराव दीवेटिया, केशवलाल ध्रुव, बलवन्तराय ठाकोर, रमणभाई नीलकण्ठ, आनन्दशंकर ध्रुव, न्हानालाल जैसे महारथियोंने पण्डित युगके पश्चात गाँधी युगमें भी अपने-अपने ढंगसे रचनाएँ की हैं।

गाँधी युग :

अर्वाचीन गुजराती साहित्यका यह तीसरा युग गाँधी युग कहा जाता है। साहित्य क्षेत्रमें इसका प्रारम्भ सन् १९२० से माना जा सकता है। गाँधीजी दक्षिण अफ्रिकासे सन् १९१५ में भारत आए। कुछ समय वे शान्त रहे। सन् १९१९ में इन्होंने "नवजीवन" और "यंग इण्डिया" शुरू किए और उसमें लिखने लगे। उनके पास जो सन्देश था उसे सारे देशके लोग समझ सकें ऐसी भाषामें देने लगे। उनकी दृष्टिसे भाषा विचार व्यक्त करनेका साधन मात्र है। उन्होंने अपनी सरल, सादी, अनाडम्बरी, सात्विक फिर भी प्रभावशाली गद्य शैलीका निर्माण किया। मोटर चलानेवाला भी जिसे समझ सके उसे मैं कविता कहता हूँ, इस तरह अपनी

साहित्य भावनाको सबोंके सामने रखा। इसके परिणाम स्वरूप साहित्यमें भाषाकी सादगी आई और भारी-भरकम संस्कृत प्रचुर पण्डित शैलीकी प्रतिष्ठा कम हुई। गाँधीजीकी गुजराती साहित्यकी प्रत्यक्ष सेवा उनकी गद्य शैलीके अलावा "सत्यना प्रयोगो" नामक उनकी आत्मकथा है। समान वर्तनी तैयार करवानेका श्रेय भी उनको ही है। साबरमती आश्रमके काका कालेलकर, महादेवभाई देसाई, किशोरलाल मशरूवाला इत्यादि आपके समीप रहनेवाले तथा उनके द्वारा गुजरात विद्यापीठके रामनारायणभाई पाठक, रसिकलाल परीख, पण्डित सुखलालजी जैसे प्राध्यापकोंकी और "सुन्दरम्", "स्नेह रश्मि" इत्यादि विद्यापीठके स्नातकोंकी सेवा गुजराती वाङ्मयको मिली, यह गाँधीजीकी परोक्ष साहित्य सेवा है।

गाँधी-साहित्यका आदर्श :

स्वयं गाँधीजी तथा उनके नेतृत्वमें लड़ा गया स्वातन्त्र्य संग्राम कवियोंकी रचनाओंके उपजीव्य बने। गाँधी युगके कई कवियोंने स्वातन्त्र्य संग्रामसे स्फुरित युयुत्साकी, स्वातन्त्र्यकी, अहिंसाकी, बलिदानकी भावनाके गीत बड़े उत्साहसे गाए हैं। गाँधीजीने दरिद्रनारायण और गाँवोंकी सेवापर जोर दिया। इसलिए साहित्यकारोंकी सहानुभूतिका क्षेत्र विशाल बन गया। अब तक जो देहातों तथा पिछड़ी जातिके मानवोंका जीवन साहित्यकारों द्वारा उपेक्षित था, उसकी ओर भी साहित्यकारोंकी दृष्टि गई। साहित्यमें जीवन तथा वास्तविक जीवनके प्रश्नोंका निरूपण होता गया और विषयका विस्तार तथा नवीनता आ जानेसे साहित्य भी प्राणवान बना। ग्रामोद्धार तथा अस्पृश्यता निवारणकी प्रवृत्ति द्वारा कई लोककथाओं (अस्पृश्यता निवारणमें सहायक होनेवाली कथाएँ) का तथा नाटकोंका सर्जन हुआ। साहित्यमें किसानों एवं मजदूरोंके सुख-दुःखको तथा वेश्या-जीवनके प्रश्नोंको भी स्थान दिया गया। गाँधीजी द्वारा निर्दिष्ट मानव-धर्ममें समाजवादी विचार-धारा आ मिली। इस विचार-धाराने कविता तथा कहानी साहित्यमें दलितोंके जीवनको तथा क्रान्तिको भी स्थान दिलाया। वास्तववादी साहित्यका ही यह परिणाम था। गाँधीजी द्वारा जागृत की गई नवचेतना तथा उनके बताए गए जनता-प्रेमके कारण तथा स्वदेशी भावनासे प्रभावित होकर लोक-साहित्यमें अनुशीलन-सम्पादन प्रवृत्तिमें बहुत बड़ी प्रगति हुई। यह उल्लेखनीय है कि इस कार्यमें दृष्टि एवं शक्ति तथा सच्ची रुचि रखनेवाले मेघाणी भाईने अपने कण्ठ-स्वर, कलम तथा रसदर्शी विवेचनोंसे सोरठी साहित्यको लोकप्रिय बनाते हुए उसे प्रतिष्ठा भी दिलाई। सच्ची राष्ट्रीय शिक्षाके सम्बन्धमें काका कालेलकर, किशोरलाल मशरूवाला तथा दक्षिणमूर्ति भवनके शिक्षा निष्णातोंकी विचारधारा और गिजुभाई तथा जुगतराम भाई जैसोंका बाल साहित्य तथा बाल शिक्षा विषयक विचार-धाराका श्रेय भी गाँधी द्वारा तैयार किए गए वातावरणको ही है।

प्रारम्भिक साहित्य सर्जन :

औद्योगिक क्रान्तिके परिणामोंने, नयी मनोवैज्ञानिक खोजोंने तथा समाजवादने पश्चिमके साहित्यपर असर डालते हुए उसे नया स्वरूप देना शुरू किया था। उसका भी प्रभाव गाँधी युगके अर्वाचीन साहित्यपर पड़ा है। इस युगके साहित्यमें लेखकोंकी कला-दृष्टि तथा प्रयोगशीलता नर्मद युग तथा पण्डित युगके लेखकोंसे अधिक तेजस्वी है। नन्दशंकरने "करणघेलो" में महीपतरामने "वनराज चावडा" जैसी तीन कथाओंमें तथा गोवर्धनरामने "सरस्वतीचन्द्र"में बहुत-सी ऐसी सामग्री दी है कि जिसका मूल कथासे कोई सम्बन्ध नहीं है। उपन्यास, कहानी या नाटकमें मूल वस्तुमें बिना कुछ मिश्रण किए, मूल वस्तुका ही उद्देश्य समक्ष रखकर कलाविधान करके कृतिको सुश्लिष्ट कलाकृति बनानेकी प्रवृत्तिके प्रथम दर्शन हमें पण्डित युग तथा गाँधी युगके बीचकी कड़ी रूप तथा गाँधी युगमें भी अब तक लिखते रहनेवाले श्री कन्हैयालाल मुंशीके पहले दो यशस्वी उपन्यास "वेरनी वसुलात" तथा "पाटण नी प्रभुता" में होते हैं। इसके साथ-साथ "कलाके लिए कला" का दृष्टिकोण भी अर्वाचीन गुजराती साहित्यमें आ गया है। गाँधी युगमें इस सिद्धान्त का कभी-कभी विरोध भी हुआ है।

इस युगमें पण्डित युगके दो बड़े कवि न्हानालाल तथा बलवन्तराय ठाकोरकी काव्य-साधना चलती रही। न्हानालालने इस युगमें बहुत-से नाटक, "कुरुक्षेत्र" महाकाव्य और अधूरा पुराणकाव्य "हरि संहिता" लिखे हैं। श्री न्हानालालके प्रारम्भ कालमें उनका प्रभाव उनके बादवाली पीढ़ीपर भी कम-ज्यादा पड़ा है। इसका असर रास तथा गीतोंके सर्जकोंपर ज्यादा हुआ है। परन्तु साहित्यिक दृष्टिसे देखा जाए तो गाँधी युगके कवियोंपर बलवन्तराय ठाकोरका प्रभाव अत्यधिक है। बलवन्तराय ठाकोरने गेयताके बदले अगेयतापर तथा सलंग अगेय प्रवाही पद्य रचनापर, उसके लिए आवश्यक अर्थानुसारी गतिवाले पृथ्वी छन्दपर, कविताकी धारा स्पर्शितापर और कवितामें विचार प्रधानता तथा अर्थघनतापर ज्यादा जोर दिया। इसका असर गाँधी युगके कवियोंपर भी हुआ है। परन्तु "सुन्दरम्", उमाशंकर तथा इस युगके अन्य कवियोंने ठाकोरसे प्रभावित होते हुए भी विपुल मात्रामें स्वतन्त्र सर्जन किया है। इस युगकी गुजराती कविता सम्वेदना तथा अभिव्यक्तिके दायरेको विस्तृत करते हुए, वह प्रगतिशील और प्रयोगशील भी रही है। इसपर गुजराती साहित्य रसिक गर्व कर सकते हैं। गाँधी युगने कविता ही नहीं, बल्कि गद्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, चरित्र, आत्मचरित्र, प्रवास वर्णन, विवेचन, हास्य साहित्य, भाषा शास्त्र, इतिहास, पुरातत्व, प्राचीन मध्य कालीन कृतियोंका सम्पादन, ऐसे वाङ्मयके सभी स्वरूपोंका सर्जन किया है कि जिसमें सर्जक-प्रतिभाकी तथा श्रम साध्य विद्वत्ताकी जरूरत रहती है। ऐसे सर्जकोंकी सूची इतनी लम्बी है कि उसे यहाँ देना सम्भव नहीं है।

गुजराती उपन्यास, कहानी तथा नाटकमें जीवन और नया खून लानेवाली बातें जो इस युगमें हुई हैं उसे "सापना भारा" तथा "आगगाड़ी" ने पहले बताया और उसके बाद जिसका अनुसरण हुआ है वह है "बोली" (Dialect) का कहानी नाटिकामें उपयोग। "बोली" का साहित्य कृतियोंमें उपयोग होनेसे उसके साथ उस बोलीके बोलनेवाले, उनका भौगालिक प्रदेश, व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन व्यवहार, उनके स्वभाव-संस्कार, रहनी-करनी वगैरह साथ आते ही हैं। रचे जाते साहित्यकी इस तरहकी वास्तविकताकी मानो मदद करनेके लिए पन्नालाल पटेल, चुनीलाल मढिया, ईश्वर पेटलीकर, पुष्कर चन्दरवारकर जैसे गाँवोंमें पले नवयुवक लेखक गुजरातको इस युगमें प्राप्त हुए। इसीका ही परिणाम है कि "मलेला जीव", "घुघवतां पूर", "जन्म टीप" तथा "मानवी नी भवाई" जैसी पुस्तकोंने साहित्य रसिकोंको अपनी ओर आकर्षित किया।

साहित्यमें विविधता तथा विपुलता :

गाँधी युगमें गुजराती साहित्यने बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त की है। पण्डित युगमें शुरू हुई नानालालकी 'उर्मि' कविताने महाकाव्य तथा पुराण काव्यके रूप धारण करनेका प्रयत्न इसी युगमें किया। पण्डित युगके बलवन्तराय ठाकोरका प्रसिद्ध और कीर्तिमान काव्य सर्जन इस युगमें नई पीढ़ीके लिए प्रेरणादायी सिद्ध हुआ। सुन्दरम्, उमाशंकर तथा उनके कई समकालीन एवं अनुगामी कवि नानालाल कान्त, ठाकोर तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी एवं समकालीन पाश्चात्य कविताके प्रभावको अपनाते हुए सतत प्रयोगशील रहे तथा कवि-कुलकी प्रिय सनातन सौन्दर्य पिपासा तथा समन्वय साधनाके प्रति निष्ठावान रहकर सामाजिक जागरूकता और मानवधर्मी संवेदनशीलताका ध्यान रखते हुए कविताका सर्जन करते हैं। यह भारतकी भिन्न-भिन्न भाषाओंके बीच समुज्वल साधना है। उपन्यासमें अभिनयात्मक कथोपकथन तथा उससे उद्भूत रञ्जकता तथा जीवनका प्रतिम्बिब हमें मुंशी, रमणलाल, मेघाणी, चुनीलाल शाह और दूसरे सामाजिक उपन्यासकारोंमें मिलता है। ऐतिहासिक उपन्यासोंमें मुंशी, धूमकेतु, चुनीलाल शाह, गुणवन्तराय आचार्य, मेघाणी तथा 'दर्शक' जैसोंकी कृतियोंमें ओजस्विता है। पन्नालाल पटेल, चुनीलाल मडिया, ईश्वर पेटलीकर इत्यादि जनपदोंसे आनेवाले उपन्यासकारोंने ग्रामीण लोक समाजका, उसके भौगोलिक, सामाजिक, व्यक्तिगत बाह्य परिवेशोंके साथ उनके सुख-दुःखादि तथा भावानुभावोंका वास्तविक चित्र इन उपन्यासोंमें चित्रित करके नया जीवन भरा है। गुजराती साहित्यकी यह औपन्यासिक समृद्धि बहुत अच्छी है। कहानी कलाका सही विकास तो गाँधी युगमें ही हुआ है। कहानीकी सिद्धि भी उतनी उज्ज्वल है। गुजराती कहानी मोपासां, चेखोव तथा आधुनिक पाश्चात्य कहानीकारोंकी कहानी कलाका अनुसरण करती हुई विकसित हो रही है। इसे धूमकेतु,

द्विरेफ, उमाशंकर आदि लेखकोंसे लेकर आजके सुरेश जोशी तकके बीसों कहानीकारों-ने अपनी कृतियोंसे सिद्ध करके बताया है।

नाट्य साहित्य क्षेत्रमें सुधार युगने केवल प्रारम्भ ही किया था। साहित्यिक उत्कर्ष तो पण्डित युगके मणिलाल द्विवेदीके "कान्ता", रमणभाई नीलकण्ठके "राई नो पर्वत" इन दो नाटकोंमें तथा न्हानालालके भाव प्रधान नाटकोंमें ही देख सकते हैं। १९२० के बाद चार दशकोंमें नाटक साहित्यका न्हानालालके नाटकोंके अलावा मुंशी, चन्द्रवदन, मेहताके नाटकोंने तथा बटुभाई उमरवाडिया, उमाशंकर, जयन्ति दलाल, मडिया, शिवकुमार आदिके एकांकियोंने काफी समृद्ध किया है। साहित्यिक नाटकों और रंगभूमिके बीच बढ़े हुए अन्तरको इन नाटकोंने बहुत कुछ कम किया है। अवैतनिक (Amature) रंगभूमिने, रेडियोने तथा लोकशिक्षणके महत्वपूर्ण साधनके रूपमें इस कलाको प्रान्तीय सरकारने जो प्रोत्साहन देना शुरू किया है इससे गुजराती नाटकके विकासमें बहुत बड़ा बल मिलेगा। गुजरातीका चरित्र वाङ्मय भी परिपुष्ट है। दलपतके जमानेका परिचय दिलाने-वाला "कवीश्वर दलपतराम"के भाग, "वीर नर्मद", "नरसैयों भक्त हरिना" और "शुक्र" नाटक जैसी रसात्मक सर्जकताके अंशोंसे भरी हुअी चरित्र कृतियाँ तथा "स्मरण मुकुर" "रेखाचित्रों" जैसे रेखा चित्र संग्रह, चरित्र नायककी महानताके कारण नहीं बल्कि उसकी रचना एवं सत्यनिष्ठाके अनुकरणीय स्तरके कारण महत्वपूर्ण हैं। गुजरातीकी ही नहीं जगत्की आत्मकथाओंमें महत्वपूर्ण गाँधीजीकी आत्मकथा "सत्यना प्रयोगो", काका कालेलकर, मुंशी, धूमकेतु, चन्द्रवदन मेहता, रमणलाल देसाई, नानाभाई भट्ट, इन्दुलाल याज्ञिक आदिकी आत्मकथाएँ "नरसिंहराम" की रोजनिशी, "महादेवभाई" की डायरी जैसी दैनन्दिनी कृतियाँ गुजराती जीवन चरित्र साहित्यके गौरवको बढ़ाती हैं। रसात्मक प्रवास वर्णनोंमें काका कालेलकरके हिमालय, ब्रह्मदेश, पूर्वी अफ्रिका तथा जापानकी प्रवास पुस्तकें, चिन्तनात्मक निबन्धोंमें काका कालेलकर, गाँधीजी, मशरूवालाके निबन्ध, तथा लेख निबन्धोंमें रामनारायण पाठक, ज्योतीन्द्र दवे, विजयराय वैद्यके निबन्धोंसे लेकर बकुल जोशीपुरा तकके लेखकोंके निबन्ध उल्लेखनीय हैं।

स्व. श्री मेघाणी रचित अनेक पुस्तकों द्वारा किया गया सौराष्ट्र लोक-साहित्य विषयक सम्पादन, रस प्रकाशन तथा अनुशीलन और श्री गिजुभाईसे शुरू करके रमणलाल सोनी तकके अनेक लेखकों द्वारा निर्मित विपुल बाल-साहित्य गाँधी युगका सर्जन है। साहित्य विवेचनके क्षेत्रमें इस युगके श्री रामनारायण पाठक, विजयराय वैद्य, विश्वनाथ भट्ट, विष्णुप्रसाद त्रिवेदी तथा दूसरे कई विख्यात विद्वानोंके नाम गिनाये जा सकते है। इनके लेखोंमें भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य मीमांसाका अध्ययन तथा विनियोग स्पष्ट रूपसे परिलक्षित होता है। जिनविजयजी, पं. सुखलालजी, दुर्गाशंकर शास्त्री, रसिकलाल परीख, रामलाल मोदी, मधुसूदन

मोदी, के. का. शास्त्री, भोगीलाल सांडेसरा, उमाशंकर जोशी इत्यादि विद्वानोंने तत्वज्ञान, इतिहास, पुरातत्व, भाषा शास्त्र, अनुशीलन जैसे विद्वत्तापूर्ण श्रम-साध्य विषयोंपर लेखनी चलाकर पण्डित युग तथा गाँधी युगका सातत्य बना रखा है। गुजराती भाषाकी वर्तनीका अब लगभग समान हो जाना इस युगकी महान् सिद्धि है।

पिछले सौ वर्षोंमें गुजराती साहित्यको उल्लेखनीय सहयोग देनेवाले पत्र-पत्रिकाओंमें मुख्य हैं :—"ज्ञानसुधा", "वसन्त", "सुन्दरी सुबोध", "साहित्य", "वीसमी सदी", "गुजरात" "युगधर्म", "प्रस्थान", "कौमुदी" "कुमार", "बुद्धि-प्रकाश", "उर्मि", "संस्कृति", "गुजराती", "नवजीवन", "प्रजाबन्धु", "सौराष्ट्र"। गुजरात विद्या-सभा, फार्बस गुजराती सभा, गुजराती साहित्य परिषद, गुजरात साहित्य सभा, साहित्य संसद तथा गुजरात विद्यापीठ जैसी संस्थाओंने गुजरातीके रसात्मक एवं शास्त्रीय वाङ्मयके उत्कर्षमें अपूर्व सहयोग दिया है।

आठ सौसे भी अधिक समयका गुजराती साहित्यका यह संक्षिप्त परिचय भारतीय भगिनी भाषाओंको सद्य: प्रतीत कराएगा कि मध्यकालीन एवं अर्वाचीन साहित्यकी सामाजिक भूमिका, उसके प्रेरक बल, साहित्यके स्वरूप एवं उसके विकासका इतिहास भारतकी वर्तमान भाषाओंके साहित्यके समान ही है। कृतियों और कर्ताओके नाम ही भिन्न हैं; शेष सभी बातोंमें समानता है।

[**नोट**—सन् १९२० से आज तकके गुजराती साहित्य का संक्षिप्त परिचय 'कवि-श्री माला : 'सुन्दरम्' में दिया गया है।]

● ● ●

दयाराम

[कवि-परिचय]

दयाराम

• • •

दयारामके व्यक्तित्व एवं जीवन प्रसंगोंको लेकर गुजरातके कई चरित्र-लेखक आकर्षित हुए हैं। अतः दयारामके रिश्तेदारोंके नाम तथा जीवन सम्बन्धी महत्वपूर्ण घटनाओंके समयके बारेमें जो मतभेद है वह उनके जीवनकी मुख्य घटनाओंके बारेमें नहीं है। नर्मदाके तटपर स्थित चाणोदमें साठोदरा नागर गृहस्थ श्री प्रभुराम भट्टके पुत्र श्री दयारामका जन्म ई. सन् १७७७ में हुआ था। दसवें वर्षमें माताको, बारहवें वर्षमें पिताको गँवा देनेवाले निराधार दयारामने परवरिश करने-वाली चचेरी बहनके अवसानके बाद ननिहाल डभोईमें आश्रय पाया। उन्होंने जीवन के उत्तरार्द्धमें की गई यात्राओंके समयको छोड़ जीवनका सारा समय डभोईमें ही बिताया। इस तरहकी किम्वदन्तियोंसे अनुमान लगाया जाता है कि माता-पिताकी अनुपस्थितिमें तारुण्यावस्थामें दयाराममें कुछ उदण्डता आ गई होगी। एक सुनारिन के घड़े फोड़ डालनेके कारण उस सुनारिन तथा उसके पतिके रोषसे बचनेके लिए उन्हें चाणोदसे भाग जाना पड़ा था।

बचपनसे ही दयारामको वैष्णव कुलके संस्कारोंका लाभ मिला था। परिणामस्वरूप बचपनसे ही उनका झुकाव भजन-कीर्तनकी ओर था। इस परिस्थिति में डाकोरवाले प्रसिद्ध इच्छाराम भट्टजीका समागम दयारामके भावी जीवनको बनानेमें बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। शुद्धाद्वैतके उस प्रखर पण्डित और भगवद्भक्तने दयारामको भक्ति मार्गका उपदेश दिया और कृष्ण कीर्तनकी कविताओंको रचने, गाने तथा भक्त जीवन जीनेकी प्रेरणा दी।

दयारामकी शुद्धाद्वैत तथा भक्ति रहस्यका निरूपण करनेवाली साम्प्रदायिक कृतियोंमें अन्तर्हित शास्त्र ज्ञान और सिद्धान्त प्रभुत्वके मूलमें उनके अध्ययन और मननका ही फल रहा होगा। परन्तु इच्छाराम भट्टजीसे प्राप्त की हुई दृष्टि और शिक्षाका भी उसमें समन्वय हुआ होगा। भट्टजीकी प्रेरणासे दयारामने भारतकी तीर्थयात्रा की। उन्होंने तीन बार भारतकी और श्री नाथद्वाराकी तो सात बार यात्रा की थी।

दयारामकी जवानीके अनेक वर्ष इस प्रकार यात्रामें ही व्यतीत हुए। इस तीर्थाटनमें उनकी भक्ति और भगवतशरण भावकी कसौटीके रूपमें और उसे पुष्टि करनेवाले कई अनुभव प्राप्त हुए। यह उनकी मारवाड़ी, मराठी, पञ्जाबी, बिहारी, सिन्धी, और उर्दू काव्य रचनाओंसे समझा जाता है कि तीर्थाटनके कारण दयारामको दूसरी प्रादेशिक भाषाओंका भी परिचय हुआ होगा। दयाराम ब्रजभाषाके अच्छे ज्ञाता थे और उसमें उन्होंने लिखा भी बहुत है।

दयारामके जीवनका उत्तरार्द्ध डभोईमें बीता। यहाँ उनकी कीर्ति उत्तरोत्तर भक्त कविके रूपमें बढ़ती गई और उनके इर्द-गिर्द भावुक प्रशंसक और भक्तोंका एक वृन्द जमा होता गया था। उत्तरावस्थामें छोटी-बड़ी बीमारियों तथा क्रमशः बढ़ती हुई आँखकी कमजोरीमें भी वे कीर्तन करना कभी चूकते न थे और नए-नए पदोंकी रचना करते थे। इनकी जीवन लीला ई. सन् १८५३ के प्रारम्भमें समाप्त हुई।

दयाराम आजीवन अविवाहित रहे। बचपनमें उनकी मँगनी (सगाई) हुई थी, परन्तु वह कन्या बाल्यावस्थामें ही मर गई। उसके बाद दयाराम भी अनाथ बन गए, इसलिए कई वर्षों तक नई मँगनी (सगाई) का कोई योग ही सम्भव न था। नई सगाईका जब प्रसंग आया, तब तक तो दयारामने अपरिणीत रहकर भक्तके रूपमें जीवन व्यतीत करनेका निर्णय कर डाला था। पुष्टि सम्प्रदायकी रीतिके अनुसार छोटी उम्रमें ब्रह्म सम्बन्ध प्राप्त करनेवाले दयारामने अट्ठाईस वर्षकी उम्रमें पक्की वैष्णव मर्यादा स्वीकृत कर ली थी। दयारामके निजानन्दी एकाकी जीवनमें आयुके उत्तरार्द्धमें एक स्त्रीने सेविकाके रूपमें प्रवेश किया। उस स्त्रीका नाम था रतनबाई। इस विधवा दुखिया सुनारिनने दयारामके दिए गए आश्रयके बदलेमें दयारामके घरको सम्हाला। वह प्रति दिन पूजा सामग्री तैयार करती और उनकी बीमारियोंके दिनोंमें सेवा-सुश्रूषा करती। अन्तिम वर्षोंमें दयारामकी आँखकी कमजोरी जब बढ़ती गई तब उनके स्वभावको बरदास्त करके भी वह उनके सहारेकी लकड़ी बनकर सेवा करती रही।

दयारामके जीवनी लेखकोंने उनकी आकर्षक कान्ति, मधुर कण्ठ, वैरागियों जैसी पोशाक प्रियता, स्त्रियोंमें लोकप्रियता, गायन-वादन कौशल, कुशल गायक, वादके प्रति सम्मानकी भावना, अनन्य कृष्णाश्रय, पुष्टि सम्प्रदाय-निष्ठाका उल्लेख किया है। इतना होते हुए भी जीवनी लेखकोंने सम्प्रदायके समकालीन गुसाई

महाराजाके प्रति अनास्था, आत्माभिमानके सामने एक-दो महाराजाओंकी उपेक्षा, आत्माभिमान विशाल होनेपर भी मृत्युके बाद अपनी पादुका पूजनेके बारेमें आन्तरिक नम्रता, शिष्य वत्सलता, अपनी कविताके लिए उच्च अभिप्राय तथा अन्तिम बीमारीके समय भविष्यकी चिन्ताका उल्लेख किया है। इन बातोंके आधारपर हमारी आँखोंके सामने दयारामकी जो मूर्ति खड़ी होती है वह हाफिज और वायरन जैसी रसिक तथा अलमस्त प्रतीत होती है, और साम्प्रदायिक वैष्णवोंको वह मूर्ति एक आदर्श भक्त कवि सरीखी ज्ञात होती है। दयारामकी समस्त रचनाएँ उनकी दूसरे प्रकारकी मूर्तिकी झाँकी उपस्थित करती हैं।

केशवलाल ध्रुवने कवि शामलके पश्चात साहित्य निर्माणकी दृष्टिसे शुष्क कालका उल्लेख करते हुए दयारामके बारेमें लिखा है :—

"इस शुष्क कालमें एक ही बेलि नव पल्लवसे युक्त होकर नयन और हृदय शीतल बनाती है। वह नर्मदा तटपर पैदा होते हुए भी अन्य देश और कालका जल पीकर फूली-फली है। हम नरसिंह, भालण और प्रेमानन्दका प्रगाढ़ परिचय दयारामकी वाणीमें पाते हैं। यह अलमस्त कवि किसीका कर्जदार नहीं रहा। नरसिंह मेहताके नामसे नया पद जोड़कर, भालण की "दशम लीला" का अपनी वाणीमें मान करके और प्रेमानन्दके "ओखा हरण"में पर्याप्त सम्वर्धन करके दयारामने ब्रह्मीऋण चुका-सा दिया है।"

दयारामकी काव्य-सेवा इतनी ही नहीं है, बल्कि यह तो उसका एक अंश मात्र है। उन्होंने सैंकड़ों ही नहीं अपितु सहस्रों पद भी बनाए है। उनके प्रशंसकोंने पदोंकी संख्या सवा लाखतक बताई है। उनकी छोटी-बड़ी पुस्तकोंकी संख्या भी सवा सौसे ऊपर कही जाती है। उसमें गुजराती तथा ब्रजभाषा दोनों कृतियोंका समावेश होता है। कहा जाता है कि उन्होंने संस्कृत और मराठी, पञ्जाबी, उर्दू, मारवाड़ी, बिहारी और सिन्धीमें भी कुछ रचनाएँ की हैं। उनकी गद्य रचनाएँ भी मिली हैं।

दयारामकी इस विपुल साहित्य-राशिमें अधिकांश सिद्धान्तात्मक है। उसमें कविने अपनी निष्ठा विषयक पुष्टि सम्प्रदायका वेदान्त मत शुद्धाद्वैतका, जिसे ब्रह्मवाद भी कहते हैं, और उस सम्प्रदायके भक्ति सिद्धान्तका शास्त्रीय किन्तु लोकसुलभ रूप निरूपण किया है। उनके इस प्रकारके साहित्यको सम्प्रदायवादी साहित्य भी कहा जा सकता है। "रसिक रंजन", "भक्ति विधान", "सिद्धान्त सार", "सम्प्रदाय सार" और "पुष्टि पथ सार मणि दाम" जैसी ब्रजभाषामें लिखी नई रचनाएँ एवं "रसिक वल्लभ", "भक्ति पोषण" और "पुष्टिपथ रहस्य" जैसी गुजराती कृतियाँ इसी प्रकारकी हैं।

गुजराती रचनाओंमें "रसिक वल्लभ" सर्वश्रेष्ठ है। ब्रजभाषाके "रसिक रंजन" तथा "भक्ति विधान" ग्रन्थ क्रमशः "रसिक वल्लभ" तथा "भक्ति पोषण" नामकी गुजराती कृतियोंकी ब्रजभाषामें आवृत्ति मात्र प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार भक्तिकी महिमा तथा उसका शास्त्र समझानेवाले कवि दयाराम भक्त कवि बने। उन्होंने "श्रीकृष्ण नाम माहात्म्य मञ्जरी" जैसी गुजराती कृति तथा "श्रीकृष्ण स्तवन चन्द्रिका", "नाम प्रभाव बत्रीसी" जैसी ब्रजभाषा कृतियोंमें भगवन्नामकी महिमा गाई। "भक्तवल" और "चौरासी वैष्णवना धोल" जैसी गुजराती रचनाएँ तथा "पुष्टि भक्त रूपमालिका" जैसी ब्रजभाषा कृतियोंमें सम्प्रदाय सम्मान्य भक्तोंका नाम-संकीर्तन किया है। वे "श्री हरिभक्ति चन्द्रिका" जैसे काव्यमें भक्तोंकी संक्षिप्त कथा कहते-कहते भक्तका लक्षण बताते हैं। वे ब्राह्मण भक्त विवाद नाटकमें–प्रख्यात सम्वाद काव्यमें–अभक्त ब्राह्मणकी अपेक्षा वैष्णव चाण्डालको श्रेष्ठ घोषित करते हैं। "मीरां मन मोहन शुं मान्युं" टेकवाला प्रख्यात "मीरां चरित्र" गाते हैं। "कुंवर बाईनुं मामेरुं" काव्यमें नरसिंह मेहताकी भक्तिकी महिमा वर्णन करनेका अवसर निकाल लेते हैं।

दयारामकी ऐसी भगवद्गुणानुवादात्मक साहित्यकी कितनी ही कृतियाँ आख्यानात्मक हैं। उनका मुख्य आधार ग्रन्थ भागवत है। उसीके आधारपर उन्होंने "रुक्मिणी विवाह", "रुक्मिणी सीमन्त", "सत्यभामा विवाह", "नग्न जीती विवाह", "अजामिल आख्यान" इत्यादि रचनाएँ की हैं। इन कृतियोंसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दयाराममें प्रेमानन्दकी भाँति आख्यान पटुता नहीं ह।

दयाराम गरबा शैलीमें रचित अपनी "श्रीकृष्ण जन्म खण्ड" स्थान-स्थानपर सरस वर्णनोंसे सिक्त कृष्ण चरित्रात्मक "सारावलि" तथा "बाल-लीला", "पत्र लीला", "कमल लीला", "रास लीला", "रूप लीला","मुरली लीला" तथा "दाण चातुरी" जैसी कृष्णलीला विषयक पदावलियोंमें विशेष सफल हुए है, क्योंकि इन ग्रन्थोंका विषय उनके परमोपास्य श्री कृष्णकी लीला है। इन काव्योंमें दयारामकी रसिकता तथा कल्पनाने उनसे भागवतकी अपेक्षा भिन्न रीतिसे भी निरुपण कराया है; जैसे—"कमल लीला" में दयारामने निरूपण किया है कि कंसने काली नागवाली यमुनाकी धारामें विकसित कमल लानेके लिए नन्दरायको आदेश दिया। उसका पालन करनेके लिए कृष्ण उस धारामें कूद पड़ते हैं। "मुरली लीला" में नित्य ही कृष्णके अधरपर रहनेवाली मुरलीपर ईर्ष्या करनेवाली राधिका तथा गोपियाँ बाँसके सारे वनोंको जलाकर खाक करनेकी इच्छा करती हैं। "रूप लीला" में ललिता द्वारा अनेक रूपधारी कृष्णका सच्चा स्वरूप जाननेकी राधाकी युक्तियों तथा उनकी निष्फलताका उल्लेख है। श्रीकृष्णकी तरह ही राधा सम्बन्धी काव्योंमें "राधाजी ना विवाह खेल", "राधिकानां वखाण" तथा "राधिका का स्वप्न" जैसे ग्रन्थोंमें दयारामकी कवित्व-रसिकता और कल्पनाका सुन्दर निर्वाह हुआ है।

दयाराम रचित "प्रेमरस गीता" तथा "प्रेम परीक्षा" रचनाएँ भी हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं। दोनोंके विषय भागवतके भ्रमर गीतके उद्धव सन्देश तथा उद्धव गोपी संवाद हैं। उद्धवने गोपियोंको ज्ञान दृष्टि द्वारा सर्व-

व्यापक, निराकार, परम चैतन्य श्रीकृष्ण स्वरूपका ध्यान करने तथा उनके दर्शन-मिलनका योग प्राप्त करनेका उपदेश दिया है। यह उपदेश गोपियोंके हृदयमें प्रविष्ट न हो सका। वे तो श्रीकृष्णको ही अपना सर्वस्व समझती और कहती हैं:—

तमारा तो हरि सघले रे, अमारा तो एक स्थले,
तमे रीझो चांदरणे रे, अमो रीझुं चन्द्र मले,
इन्दुने अवलोकी रे, चकोर नुं चित्त ठरे,
प्रकाशने पेखी रे, कहो शुं सन्तोष धरे ?

—(प्रेम परीक्षा)

[तुम्हारा हरि सर्वत्र ह। हमारा तो एक स्थानपर है। तुम चाँदनीपर रीझते हो और हम चन्द्रपर रीझती हैं। चन्द्रमाको देखकर चकोरका चित्त शीतल होता है। वह भला प्रकाशको देखकर कैसे सन्तोष धारण करे ?]

गुरु बननेकी कामनासे आए हुए उद्धव प्रेम-पगी गोपियोंके भक्त और प्रशंसक बनकर वापस लौटते हैं। ज्ञानसे प्रेम लक्षणा भक्तिको श्रेष्ठ प्रतिपादित करनेवाले इस काव्यकी पंक्ति-पंक्तिमें मूर्त होनेवाली गोपियोंकी असीम कृष्ण प्रीतिसे भक्ति रस परिपूरित हो उठा है।

दयारामके कृष्ण कीर्तनात्मक साहित्यमें रसकी दृष्टिसे उनके गरबी नामक पद अधिक आकर्षक हैं। दयारामकी प्रतिभा आख्यानकारकी अपेक्षा उर्मिगीत गायककी ही है। ऐसे पद उनके समस्त साहित्यके एक छोटे-छोटेसे भागके होते हुए भी कवित्वके उच्च शिखरका दर्शन कराते हैं और दयारामको सच्ची कवि-सिद्धि बन गए हैं। यों तो नरसिंह तथा भालणके समय से ही पद रचना होती आ रही थी, किन्तु दयारामने उसमें विविध राग-रागिनियोंका समावेश करके पद काव्यको समृद्ध किया है और सुशोभित बनाया है।

इन गरबियोंका विषय राधा और गोपियोंका उत्कट कृष्ण प्रेम और श्री कृष्णकी गोपियोंके साथ की गई लीला है। इनमें दयारामने आँखोंके सामने ब्रजका चित्र ही उपस्थित कर दिया है। कविने स्वयं गोपियोंसे तादात्म्यका अनुभव कर, कोई एकाध कृष्णकी मतवाली ब्रजांगना बन कृष्ण रतिको विविध रीतिसे भाव-विभोर होकर गाया है। तभी वे पद इतने सरस बन सके हैं। अनेक गरवियोंकी योजना इस प्रकार की गई है मानो उनमें गोपियोंका भाव सम्वेदन उनके ही उद्‌गारके रूपमें प्रकट हुआ हो जिसने उनके हृदयपर जादू किया है उस नन्दकिशोरका रूप तो देखो:—

किये ठाम मोहनी न जाणी रे मोहनजी माँ किये ठामे।
आज गई तो कालिन्दी तीर रे भरवाने पाणी,
शोभा सलूणा श्याम नी तुं जाने सखी शोभा सलुणा श्यामनी
कामण दीसे छे अलबेला तारी आँखमां रे।

[मोहनजी में मोहिनी किस स्थानपर है, यह समझमें नहीं आता। आज कालिन्दी तटपर पानी भरने गई थी। री सखी ! तू सलोने श्यामकी शोभा देख, सलोने श्यामकी। हे अलबेला, तेरी आँखमें कुछ अजीब जादू नजर आता है।]

सत्कारभाव प्रकट करती हुई गोपियोंने कन्हैयाके प्रति उन गरबियोंमें हृदयकी प्रीति भक्ति प्रकट की है :—

मोहनजी रे, मारा जीवन, प्राण जीवन, हुं बलिहारी राज ! घणी खमा !

[मोहनलालजी ! मैं अपना जीवन, प्राण जीवन न्योछावर करती हूँ। दीर्घ जीवी बनो।]

सूणो शामला, हुं तम माटे घेली थई जो।

[हे श्याम ! सुनो, मैं तुम्हारे लिए दीवानी हो गई।]

वांकुं मा जोशो वरणागिया, जोतां कालजडामां कांई कांई थाय छे।

[हे छैल ! तुम तिरछे मत देखो। देखते ही कलेजेमें न जाने क्या होने लगता है।]

अलबेलाजी, प्राणधार रे तम पर वारी रे।

[हे अलबेला ! प्राणाधार ! मै तुमपर न्यौछावर हो गई।]

इन गरबियोंमें गोपियोंका आत्म-निवेदन दर्शनीय है। दयारामने नीचे लिखी गरबियों द्वारा गोपियोंकी कृष्णके प्रति उत्सुकता प्रकट की है :—

ऊभा रहो तो कहुं वातडी बिहारीलाल !

[बिहारीलाल खड़े रहो तो बात कहूँ।]

मारुं मन मोह्युं वांसलडीने शब्द कानडे काला।

[हे काले कान्ह ! मेरा मन बाँसुरीके शब्दपर मोहित हो गया।]

सामुं जो नन्दना छोगाला, मारुं चित्त चोरणवाला।

[हे नन्दके प्यारे ! मेरा चित्त चुरानेवाले ! मेरे सामने देखो।]

ओरा आवने सलुणा, हरि शामला जो।

[हे हरि, साँवले सलोने ! देखो, इधर पास आओ।]

घेली मुने कीधी श्री नन्दजीना नन्दे ॥
[श्री नन्दजीके नन्दने मुझे बावली बना दिया।]

राधा जैसी कुमारी गोपकन्याका भाव तो देखिए :—

माडी नन्दनो कुंवर, मारी केडे पड्यो रे।
[री माँ ! नन्दकुँवर मेरे पीछे पड़ गया है।]

नन्दनो कुँवर परणाव हो माडी, मुने नन्दनो ॥
[हे माँ ! मेरा नन्दकुँवरके साथ विवाह कर।]

पनघट अथवा रास्तेपरकी अच्छी लगनेवाली शरारतोंपर कृष्णके प्रति गोपियोंकी डाँट-फटकार, समय भंगकी चिढ़के उद्‌गार, दूसरोंको सन्तोष देनेवाले नन्दकिशोरके प्रति प्रीतिके ताने मारना आदि भावोंको प्रकट करनेवाली गरबियाँ भी कम नहीं है :—

वासलडी वाजी सांजे आज वांसलडी वाजी।
[आज शामको बंशी बजी, आज बंशी बजी।]

माणीगर आओ मारा म्होल माणीगार ! आओ० ॥
[हे रसिक ! मेरी गलीमें आओ, रसिक आओ।]

रंग भर्यो आवे सलुणो छेल, प्रीते पधरावुं म्हारे म्हेल।
[रंगसे भरा हुआ सलोना छैला आए मैं अपने भवनमें उसका प्रीति-पूर्वक सत्कार करूँ।]

आओनी मारे घेर माणवा होजी राज, आओ मारे घेर माणवा ॥
[हे राज ! मेरे घर सुख भोग करने आओ, मेरे घर सुख भोगने आओ।]

आओ अलबेला मारे आंगणे।
[हे अलबेला ! मेरे आँगनमें आओ।]

इस प्रकार "सलूणो छेल" कृष्णको आमन्त्रित करती हुई तथा गोपियोंकी हृदय-वृत्तियोंको प्रकट करती हुई गरबियाँ है। परिणीता गोपीको "शीख सासूजी

दे छे रे वहुजी रहो ढंग" (सासूजी उपदेश देती हैं कि बहूजी, ढंगसे रहो।) जैसे पदमें सासूकी फटकार और "वृन्दावननी वाट रमीशुं रंग" (वृन्दावनकी राहपर रंग खेलूँगी) के रूपमें साफ शब्दोंमें बहूका उत्तर पेश करती हुई गरबियाँ गोपाङ्गनाओंकी उत्कट कृष्ण-भक्तिका आलेखन करती हैं। ऐसी उत्कट कृष्ण-भक्तिमें औरको हिस्सेदार बनाना भला किसे पसन्द होगा ? इसीलिए कृष्णानुरागी ब्रजनारीको ऐसी हिस्सा बटानेवाली वस्तु सौतके समान प्रतीत होती है। वह कहती है :—

मानीतीः तुं छे मोहन तणी हो वांसलडी।
[हे बंशी ! तू मोहनकी प्यारी है।]

ओ वांसलडी ! वेरण थई लागी रे व्रजनी नार ने।
[हे वंशी ! तू ब्रजनारियोंकी वैरन हो गई है।]

इन गरबियोंकी कल्पना कितनी रसिक है !

दयारामने कन्हैयाके ऐसे ही प्रेमका अनुभव करनेवाली भक्ति-विह्वला किसी गोपीको सम्बोधित करते हुए एक गरबीमें लिखा है—"फूली अलबेली, आव्या वहाला, फूली अलबेली।"

इस गोपीका भाव कितना मनोरम है :—

चांदलिया रे चालीश मा, अति उतावलो।
[हे चन्द्रमा ! तुम जल्दी मत चलना।]

मान्यो मननो मोहनवर, पामियाँ जो रे।
[जो मनको पसन्द है, ऐसा मोहन हमें वरके रूपमें मिल गया है।]

ऐसी स्वाधीन-पतिका सन्तोषकी स्मृतिके साथ अपने सुखद अनुभवको जिस प्रकार गाती है, उसे "हुं हुं जाणुं वहाले मुज मां शुं दीठुं" गरबीमें सुन्दर ढंगसे अभिव्यक्ति मिली है। ऐसी गोपी प्रियतमसे प्रेम करनेके साथ मान भी करती है। दयारामने इन भावोंको प्रकट करनेवाली गरबियाँ भी लिखी हैं :—

श्याम रंग समीपे न जाऊँ मारे आज पछी श्याम रंग समीपे न जाऊँ।
[मै आजसे श्याम रंगके समीप नहीं जाऊँगी, श्याम रंगके पास भी नहीं जाऊँगी।]

माने तमारे ते घेलडुं छबीला, कहयुं माने तमारे ते घेलडुं।
[वह मतवाला छबीला तुम्हारी बात मानता है, तुम्हारा कहना वह मतवाला मानता है।]

दयारामने स्थान-स्थानपर विनोद-चातुर्य-लहरी भी प्रवाहित की है। ऐसा चातुर्य "मुजने अडशो मा, आघा रहो अलबेला, छेड़ो,अडशो मा" जैसी गरबियोंमें दृष्टिगोचर होता है। "कहान कुंवर काला छो, अडतां हुं काली थयी जाऊँ" कहनेवाली राधिकाको कृष्णका उत्तर देखिए :—

तुं मुजने अडतां श्याम थअीश तो हुं क्यम नहि थाअूं गोरो ?
फरी मलतां रंग अदला बदली, मुज मोरो तुज तोरो

[यदि तू मुझसे मिलकर श्याम होगी तो मैं गोरा क्यों नहीं होऊँगा ? फिर मिलनेपर रंग अदल-बदलकर मेरा मुझे और तेरा तुझे मिलेगा।]

इस प्रकार एकके बदले दो बार आलिंगनका लाभ लेते-देते हैं।

इसी प्रकार कृष्ण गोपीका वाग्युद्ध देखते ही बनता है :—

आठ कुवाने नव वावडी रे लोल।

[आठ कुँए और नव बावलियाँ हैं।]

वांकारे वांका शुं रे हींडो छो ? आवडुं शुं रे गुमानजी ?

[तुम कैसे बाँके-बाँके चलते हो ? ऐसा क्या गुमान है ?]

नेण नचावता नन्दना कुंवर, पाधरे पंथे जा।

[हे नन्द कुंवर ! अपने नेत्र नचाते हुए सीधे रास्ते चला जा।]

श्याम सलखणा रहो, कहुं छुं शिखामण लो मानी जी।

[हे श्याम ! तुम सीधे रहो, मैं जो सीख दे रही हूँ उसे मान लो।]

इन गरबियोंमें दयारामने कृष्णको नटखट और चतुर रसिक वरके रूपमें चित्रित किया है। मानिनी राधाके साथ अथवा प्रणय मान प्रकट करनेवाली अन्य गोपियोंके साथ कृष्णकी चाटूक्तियाँ देखिए :—

राधे, तुं प्यारी जे बीजुं अवर न कोई ॥

[हे राधे ! तू ही प्यारी है, दूसरी कोई प्यारी तेरी जैसी नहीं।]

मर्मनां वचन शाने बोले हो माननी तुं मर्मना।

[हे मानिनी ! तू मार्मिक वचन क्यों बोलती है ?]

तारा सम जो तारुणी तुं मने सर्वथी बहाली रे।

[हे तरुणी ! तेरी शपथ है, तू मुझे सबसे अधिक प्रिय है।]

इन गरबियोंमें कृष्णका दाक्षिण्य कितना सुन्दर विकसित हुआ है! इसी प्रकार "सांभल रे तुँ सजनी मारी, रजनी क्यां रमी आवी जी" जैसे सखीके संवादों-वाली गरबीमें तथा "व्हालमजी कई साथे लपटाणा", "रंगीला रंग भर क्यां रमी आव्या लाल कोनी माला चोरी लाव्या" आदि कृष्णको सम्बोधित करनेवाली गरबियोंमें भी राधा और गोपियोंकी आकृतिमें कृष्ण-विरह विशेष प्रकारका रंग भरता है:—

सखी हुं तो जाणती जे सुख हशे स्नेहमां।
[हे सखी! मैं जानती थी कि स्नेहमें सुख होगा।]

मुने अंग अंग लागी लाह्य कालज कोई कापे रे।
[मेरे अंग-अंगमें आग लगी हुई है। कोई कलेजेको काट रहा है।]

प्रेमनी पीडा ते कोने कहीअे मधुकर प्रेमनी पीडा।
[हे मधुकर! प्रेमकी पीड़ा कहो किससे कहें?]

कृष्णके व्रज गमनके बाद गोपियोंकी विरह वेदना प्रकट करनेवाली गरबी देखिए:—

ओ ओद्धवजी वहाले तो विसारी अमने मेल्यां
[हे उद्धव! प्रियतमने मुझे बिसार दिया।]

उद्धव नन्दनो छोरो ते नमेरो थयो जो
[हे उद्धव! नन्दका छोकरा निर्मोही हो गया है।]

उद्धवजी, माधवने कहेजो अेटलुं
[हे उद्धव! माधवसे इतना कहना]

उद्धवको सम्बोधित करनेवाले ये पद तथा "प्रेम रस गीता" व "प्रेम परीक्षा"के पदोंको छोड़कर (प्रेम-परीक्षा भी ऐसी गरबी ही है।) गोपियोंके विरह सन्तप्त हृदयकी भावोर्मियाँ ऐसे काव्यको हृदयस्पर्शी बनाती हैं।

राधा तथा गोपियोंके एवं कृष्णके उद्‌गार व्यक्त करनेवाले अनेक नाट्यात्मक ऊर्मि-काव्य (lyric poetry) हैं, किन्तु ऐसी भी गरबियाँ दयारामकी लिखी हुई मिलती हैं, जिसमें कवि वर्णन करता हुआ पाया जाता हैं। नीचेकी रचनाएँ इसी कथनका प्रमाण हैं:—

गरबे रमवाने गोरी निसर्यां रे लोल
[ब्रजकी गोरियाँ गरबा नृत्य करने निकल पड़ीं।]

राधे ! रूपाली, रसीली तारी आंखडी जो
[हे राधे ! तेरी आँख सुन्दर और रसीली है।]

वागे वृन्दावनमां वांसडी रे ऊभो ऊभो वगाडे कान
[वृन्दावनमें बंशी बज रही है, कृष्ण खड़ा-खड़ा बजा रहा है।]

हां रे वृन्दावनमां थनककार थै थै
[हाँ, वृन्दावनमें थेई-थेई नृत्य हो रहा है।]

इनमें दयारामके कवित्व, रसिकता, चित्रात्मक वर्णन तथा शब्द प्रभुत्वकी प्रतीति होती है। राधाका रूप-वर्णन अन्य अनेक गरबियोंका भी विषय बना है।

इस प्रकार दयारामने शृंगारिक कल्पनासे राधा, गोपियों तथा कृष्ण सम्बन्धी सम्भोग और विप्रलम्भ दोनों प्रकारकी भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंकी कल्पना की है। उन्होंने प्रियतम कृष्ण तथा उनकी व्रज-प्रेमिकाओंके वैविध्यपूर्ण भाव-सम्वेदनाओं और अनुभवोंको गरबियोंमें उमंगित होकर गाया है। उन्होंने इससे कृष्ण-लीला गायनका सन्तोष प्राप्त किया है और गुजरातीको सुन्दर पद-साहित्यसे समृद्ध भी बनाया है। उनके गीत पदोंमें विविध प्रकारके राग और तालोंकी बहार है, संक्षिप्त रूपमें गाढ़-भावसे अभिव्यक्त होनेवाली कृष्ण-लीला गोपियोंके हृदयकी सुकुमार और उत्कृष्ट भावोर्मियाँ हैं, संगीत तथा भावोंके अनुरूप माधुर्य स्रवित वाणी है, उनमें कवि उल्लासपूर्ण भक्ति-रसके साथ यथावकाश चातुर्य तथा विनोदसे परिपूर्ण लहरियाँ स्पन्दित करता है। इस प्रकार ऊर्मि गीतोंके उत्तम नमूनोंको प्रकट करनेवाली दयारामकी गरबियाँ नरसिंह और मीरांके बादकी भक्ति-शृंगारमयी मध्यकालीन पद रचनाकी पराकाष्ठा कही जा सकती हैं।

इन गरबियोंने ही दयारामके बारेमें क्रमशः गोवर्धनराम, न्हानालाल तथा श्री मुशीजीको नीचे लिखे स्तुति-वचन कहनेके लिए बाध्य किया है :—

"So far as poetical powers are concerned, he is undoubtedly the greatest genius since the days of Premanand. His poems on Krishna and the maids of Gokul are a stream of burning lava of realistic passion and love, and if lewdness of writings do not take away from the merits of a poet, he is a very great poet indeed. He has a weird and fascinating way of bodying forth a host of over-fondled spirits of uncontrollable will in a language which is not only atonce

popular and poetical, but drags society after him to adopt, as popular, the language he creates for them anew. He introduces the men and women of his country to a luxuriance of metres, whose wild music makes them bear with the flame of his sentiments, and there is a subtle naivete in everything that comes out from him."

[गोवर्धनराम : 'Classical Poets of Gujarat'-pp. 67-8]

"गुर्जरी साहित्य कुञ्जको भरकर वंशीका राग छेड़नेवाला यदि कोई है तो दयाराम। जिस बंशीको कृष्णने व्रजमें, वल्लभाचार्यजीने गोकुलमें बजाया था, उसी रससौन्दर्यकी अमृत बंशीको दयारामजीने नर्मदा तटपर बजाया। दयारामजीकी गरबियोंकी कल्पनामें मानो बिजलीकी चमक है, मानो वे नर्मदाके मीठे जलकी रस-सरिताके हृदयकी पवन पदचिह्नित लहरियाँ हों, मानो वे दयारामजीकी गीत-भाषा हों। दयाराम अर्थात् गुजरातका माधुर्य-गुञ्जन, चमक, विह्वलता। जगत भरके साहित्यमें गुजरातके नारी संगीतका, गुजरातकी गरबियों तथा गुजरातिनके रासका स्थान सदा अनुपम है और उन गरबियोंके सम्राट्, गुजरातिनके हृदयराज दयारामका भी स्थान अपूर्व है.....उनकी एक-एक गरबी गुजरातका मूल्यवान रस-मोती है।"

[कवि न्हानालाल : आपणा साक्षर रत्न-२]

"भाषाकी संस्कारिता, समृद्धि अथवा संगीतमें, भावोंके जादू अथवा प्रवाहमें, भाव-वैविध्यकी रंगबिरंगी चमकमें, हृदयवेधक शब्द-माधुर्यकी मोहनीमें, प्रणय-पिपासाकी तीव्रतामें गुजराती साहित्यका कोई कथनकार उन्हें (दयाराम) स्पर्श नहीं कर सका। यदि "चातुरी छत्तीसी" अथवा "रास सहस्र पदी" ग्रन्थ नरसिंह मेहताके रचे माने जाएँ तो नरसिंह मेहताको छोड़ गुजरातने प्रणय-गानका गायक केवल एक दयाराम ही पैदा किया है।"

[कन्हैयालाल मुन्शी : मध्य कालना साहित्य प्रवाह पृ. ३८९]

आगे श्री मुन्शीजी लिखते हैं—"दयाराम यों तो भक्त कहे जाते हैं, किन्तु वे सदा कवि ही हैं। उनके काव्य भक्ति-साहित्य कहे जाते हैं, किन्तु वे मानव प्रेमके भक्ति साहित्यके उदाहरण हैं। जिस युगमें भक्त कहलाये बिना भावाभिव्यक्ति सम्भव नहीं थी, उस जमानेमें उन्हें भक्त होना पड़ा। उस जमानेके भक्तिके कृत्रिम आडम्बरमें अन्तर्हित प्रणय मूर्तिके लिए उर्मि गीत गानेवाले वे कविवर थे।

वस्तुत: दयारामकी गरबियाँ भक्ति शृंगार 'भागवत' तथा 'गीत गोविन्द' की प्रणालीपर रची गई हैं। गुजरातमें इस प्रणालीकी कविताएँ नरसिंह मेहतासे दयाराम तक रची गई हैं। दयाराम पुष्टि-सम्प्रदायके वैष्णव थे। वे रसेश कृष्णको ही पुरुष मानकर उन्हें गोपी भावसे भजनेकी प्रणालीके पुजारी थे। "एक वया गोपीजन वल्लभ, नहि स्वामी बीजा" के दृढ़ निश्चयी थे। मानिनी राधाको मनाकर उन्हें प्रसन्न करनेवाले कृष्णकी लीला गाते हुए एक पदमें "ए दम्पतीनी दासी थावाने दास दया गुण गाए" और दूसरे पदमें "तमे दया सखीने मन भावजो" कहते हैं। वे एक कवि थे, इसलिए उनकी रसिकता तथा कल्पनाने अत्यधिक प्रगल्भतासे गोपी-कृष्ण विहारके आलेखनको अधिक विलासपूर्ण बना दिया है। उन्होंने सच्चे भावसे यह माना है कि स्वयं अपने स्वामी—दया प्रीतम—की लीला भक्ति-भावसे गा रहे हैं।

उनकी कृष्णभक्ति सच्ची है, उसमें अन्तरको ढँकनेवाला कोई पर्दा नहीं है। कवि न्हानालालने एक स्थानपर लिखा है कि यदि राधा-कृष्णका रसकीर्तन गाना ही विषय-लम्पटता माना जाय तब तो स्वामीनारायण सम्प्रदायके परम साधुवर अनाचारी कहे जाएँगे। इसी सम्बन्धमें उन्होंने दयारामको गुजरातकी गोपी कहा है। सचमुच यही उचित अर्घ्य है। दूसरे शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि दयाराम अपनी गरबियोंमें अपनी रस-रुचिकी मर्यादाओंके साथ गुजरातके जयदेव बन गए हैं। उनके शृंगारकी स्थूलतासे नरसिंह मेहताका शृंगार कम स्थूल नहीं है। नरसिंहने "हरि लीला शणगार जे गाता विषयी नहि कहेवाय" कहकर अपने वर्णनकी उपादेयता जिन शब्दोंमें प्रतिपादित की है वैसा ही दयारामने भी कहा है :—

जेणे कामने मोह पमाड्या रे ते प्रभु कामवश क्यम थाये ?

[जिसने कामदेवको मोहित किया वह प्रभु कामवश कैसे होगा ?]

कृष्ण क्रीडा रस गातां रे, कामरोग उर थी जाय

[कृष्ण-क्रीडा-रसको गाते-गाते हृदयसे कामरोग दूर हो जाता है।]

यह स्मरणीय है कि दयारामके इन शब्दोंपर विश्वास करके उनकी अनेक गरबियाँ समस्त गुजरातमें स्त्रियाँ नि:संकोच भावसे गाती हैं। उनके भक्ति वैराग्यके पद तथा दीनतासे भरी प्रार्थनामें सच्चे भक्त हृदयका चित्र उपस्थित करती हैं।

यदि दयारामका भक्त-हृदय देखना हो तो हमें उनके प्रार्थना-काव्योंको देखना चाहिए। हृदयके सही आर्त्त स्वरमें उन्होंने गाया है कि :—

जेवो तेवो हुं दास तमारो, करुणासिंधु ग्रहो कर मारो

[हे करुणासिन्धु ! जैसा मानो वैसा मैं तुम्हारा दास (सेवक) हूँ। मेरा हाथ पकड़ लो।]

हरि हुं शुं करूं रे ? मारो माया न मूके केडो ?
[हे हरि ! यह माया मुझे छोड़ नहीं रही है। मैं क्या करूँ ?]

दामोदर दुःखडा कापो रे पावले लागुं
[हे दामोदर ! मैं तुम्हारे पाँवोंमें पड़ता हूँ, मेरे दुख दूर करो।]

कृपा सिन्धु कहावो रे, कृपा मने क्यम ना करो ?
[आप तो कृपासिन्धु कहे जाते हैं, फिर मुझपर कृपा क्यों नहीं करते ?]

दर्शन दोनी दासने मारा गुणनिधि गिरधरलाल
[हे मेरे गुणनिधि गिरधरलाल ! इस सेवकको दर्शन दीजिए न।]

मारे अन्त समये अलबेला मुझने मुक्शो मा
[हे अलबेला ! मुझे अन्तिम समय छोड़ न देना।]

इस प्रकार भक्ति-आर्द्र प्रार्थनाओं द्वारा दयारामने प्रभुको याद किया है। ऐसे पद उन्होंने सर्वाधिक लिखे हैं। "विज्ञप्ति विलास" के पदोंमें वर्णित भावों द्वारा अपने स्खलन और अपात्रताको स्वीकार करके प्रभुकी कृपा याचना करनेवाले दीन भक्तकी मूर्ति हमें सच्चे दयारामकी झाँकी कराती है। वह दीनता अपनेको "हरहाया पशु" कहकर वर्णन करनेवाले उनके विख्यात पदोंमें भी दिखाई देती है। जीवन-लीला समाप्तिके क्षणकी प्रतीतिके अवसरपर रचा गया यह पद "मनजी मुसाफर रे चालो निज देश भणी" हमारे मनमें जिस ज्ञानी भक्तराजकी मूर्ति खड़ी कर देता है, वह आदरणीय है।

नीचे लिखे पद भक्ति और भक्ति रससे छलकनेवाले प्रेमांशी जनोंका गौरव व्यक्त करते है और भक्तिका मार्ग भी बताते है :—

जो कोई प्रेम-अंश अवतरे प्रेमरस तेना उरमां ठरे
[जो कोई प्रेम अशमें अवतीर्ण होता है, उसके हृदयमें प्रेमरस स्थिर होता है।]

जेना हृदयमां अखंड रसिकरूप तेने कांई नथी करवुं रे
[जिसके हृदयमें रसिकरूप भगवानका अखण्ड वास है उसे कुछ करना नही है।]

प्रगट मल्ये सुख थाय श्री गिरधर प्रगट मल्ये सुख थाय
[भगवानके प्रत्यक्ष मिलनेसे सुख मिलता है। श्री गिरधरके प्रत्यक्ष मिलनेसे सुख मिलता है।]

लोचन मननो रे के झघडो लोचन मननो
[लोचन और मनका झगड़ा है।]

निश्चयना महेलमां वसे मारो व्हालमों
[निश्चय रूपी महलमें मेरे प्रियका वास है।]

हो मनवा श्री हरि शरण रहेजे
[हे मनुवा! श्री हरिकी शरणमें रहना।]

हरिदासा हरिदासा बन जा हरिदासा
[हरिदासा, हरिदासा, तू हरिदासा बन जा।]

साचुं ते सगपण रे, समज मन श्याम तणुं
[हे मन! श्यामको ही तू सच्चा सगा स्नेही समझ ले।]

दयारामने उपर्युक्त पदोंके साथ-साथ अनन्य भक्ति तथा शरणागतिका उपदेश देनेवाले और हरिजनोंको चिन्ता न करनेका परामर्श देनेवाले पदोंमें ऐसे भक्ति-मार्गका अनुसरण करनेवाले "तादृशी जन" और "भगवदी" के लक्षण बतलानेवाले पद भी लिखे हैं। "तादृशी जन तेने जाणी ए रे" यह पद नरसिंहके "वैष्णव जन तो तेने कहिए" पदका स्मरण दिलाता है। अन्तरसे जो सच्चे वैष्णव न हो पाए है ऐसे मिथ्याचारियोंको अथवा कच्चे साधकोंको—

"तू अभी वैष्णव नहीं हो पाया है, हरिजन नहीं हो पाया है,
फिर अभिमानमें क्यों मस्त है?"
"तेरे मनमें जो कपट है, वह कपट जब तक नहीं जाता,
तब तक हरि तुझपर प्रसन्न कैसे हो सकते हैं?"

ऐसे पदों द्वारा वे टोकते है और प्रेरणा देते हैं। वे ईश्वरसे विमुख बने हुए जीवोंको चेतावनी देते हैं:—

"क्यों फूला हुआ फिरता है? तू अपना मार्ग भूल गया है
और भव-रूपी कूपमें पड़ा हुआ है।"
"तेरा अमूल्य अवसर व्यर्थ ही चला जा रहा है। तू गोविन्दको गा ले!"

ऐसे पदोंमें पूर्ववर्ती भक्त कवियोंकी चेतावनीको दुहराते हुए भक्ति करनेका उपदेश दिया गया है। ऐसा उपदेशात्मक साहित्य दयारामने पदोंमें और लम्बी पद्यकृतियोंमें भी लिखा है। "मन मति सम्वाद", "मन प्रबोध", "प्रबोध बावनी" और "चिन्ता चूणिका" उनकी कृतियाँ हैं।

दयारामने ब्रजभाषामें "वस्तु वृन्द दीपिका", "सतसैया" और अन्य राग-ताल और पिंगल-विषयक जो कृतियाँ लिखी हैं, वे दयारामके सामान्य ज्ञान, काव्य-शास्त्रके ज्ञान और सङ्गीतके ज्ञानकी प्रतीति कराती हैं। "वस्तु वृन्द दीपिका" एकसे एक सौ आठ तक की संख्याओंके वस्तु वृन्दका पद्यबद्ध ज्ञानकोश है। उनकी

पद्य रचनामें जो चित्रालङ्कार और शब्दालङ्कारकी करामात और रस एवं नायिका भेदके निरूपणके साथ जो आन्तरिक भक्तिरस दृष्टिगोचर होता है, उसकी प्रतीति "सतसैया" के सात सौ से अधिक दोहोंसे होती है और यह भी जाना जाता है कि इस भक्ति रसिक कविका ब्रजभाषाकी कविता शैलीपर भी कितना अधिकार है!

इस "सतसैया" पर खुद दयारामने ही गुजरातीमें गद्य टीका लिखी है। उसके उपरान्त उन्होंने "हरिहर तारतम्य", "भागवतसार", "प्रश्नोत्तर माला", "कलेश कुठार" (लघु और बृहत्) और "प्रश्नोत्तर विचार" जैसी कृतियाँ गद्यमें लिखी हैं। दयारामने गद्यकारके रूपमें कोई प्रशंसनीय सिद्धि प्राप्त नहीं की। "सतसैया" की टीकामें जो गद्य है, वह वाक्योंको सरलतासे समझानेवाले कथा वाचकोंकी व्याख्यान शैलीका गद्य है। गुजराती गद्यका वास्तविक निर्माण और साहित्य-क्षेत्रमें विकास तो दयारामके अवसानके बाद ही हुआ।

यों तो दयारामका साहित्य विशाल है, परन्तु गरबियोंमें ही उन्होंने वास्तविक सिद्धि प्राप्त की है, उन गरबियोंने ही उन्हें लोकप्रिय कवि बनाया है। उनकी गरबियोंमें कुछ ग्राम्य-प्रयोग और अपने बनाए हुए शब्द-प्रयोगोंका बाहुल्य होने-पर भी उनमें उच्च कोटिका वाणी-माधुर्य तथा भाषा-प्रभुत्व भरा होनेके कारण उन्होंने गुजरातके जन-हृदयपर अधिकार कर लिया है। उन गरबियोंमें प्रयुक्त विविध राग-रागिनियोंके मीठे संगीतसे, भागवत कालसे इस देशके लोक-हृदयमें मोहिनी पैदा करने-वाले रसेश्वर कृष्णकी ब्रजलीलाके भक्ति और शृङ्गार रसकी बाढ़को लानेवाली कल्पनाओंसे और रसिक कवियोंको पूरी सुविधा देनेवाली काव्य-वस्तुसे तथा उस वस्तुके खुले मनसे उठाए गए लाभसे दयारामने गुजरातके जन-हृदयपर आसन जमा लिया है। दयारामकी गरबियोंको सुननेके लिए पेटलादसे डभोई जा पहुँचनेवाली नागर महिला का प्रसङ्ग उनकी गरबियोंकी लोकप्रियताकी प्रतीति कराता है। मधुर गानेवाली महिलासे "तेरा कण्ठ मुझे दे, मैं तो रचना मात्र ही कर पाता हूँ" कहनेवाले दयारामकी गरबियोंको केवल उसे एक ही महिलाको नहीं,परन्तु गुजरातका समस्त नारी समाजका कण्ठ मिला है, जिसपर सवार होकर उन गरबियोंने अब तक गुजरातको गीतोंसे गुञ्जित रखा है। इन गरबियोंने अर्वाचीन युगके रास लेखकोंको प्रेरणा और पाथेय प्रदान किया है।

जिस वैष्णव भक्ति कविताका आरम्भ नरसिंह महेताके समयसे हुआ, उसका अन्तिम उच्च शिखर दिखलानेवाली कविताके सर्जक इस वैष्णव नागर कविके अवसानके साथ गुजराती साहित्यका मध्यकाल समाप्त होता है और उसका अर्वाचीन युग प्रारम्भ होता है। गुजरातमें अर्वाचीन युगकी हवाकी लहरें दयारामके उत्तरार्द्ध से ही लहराने लगी थीं। परन्तु उन लहरोंने पुरोगामी मध्यकालीन कवियोंकी प्रणालीमें मस्त इस कविको जरा भी स्पर्श नहीं किया। इसीलिए वे मध्यकालीन गुजराती साहित्यके अन्तिम तेजस्वी प्रतिनिधि बन पाए हैं।

● ● ●

दयाराम

[काव्य-सञ्चय]

१. पारणुं

माता जसोदा झूलावे पुत्र पारणे,
झूले लाडकडा पुरुषोत्तम आनन्दभरे
हरखी नीरखीने गोपीजन जाये वारणे,
अति आनन्द श्रीनन्दाजी ने घेर । माता० ।।१।।

हरिना मुखडा ऊपर वारुं कोटिक चन्द्रमा,
पंकजलोचन सुन्दर विशाल कपोल,
दीपक शिखा सरखी दीपे निर्मल नासिका,
कोमल अधर अरुण छे राताचोल । माता० ।।२।।

मेघश्याम कान्ति भ्रुकुटी छे वांकडी,
खीटलियाला भाल उपर झूमे केश,
हसतां दन्तूडी दीसे बेउ हीराकणी,
जोतां लाजे कोटिक मदन मनोहर वेश । माता० ।।३।।

सिंहनखे मढेलुं शोभे सोव्रण सांगलुं,
नाजुक आभ्रण सघलां कञ्चन, मोतीहार,
चरणअंगूठो धावे हरि बे हाथे ग्रही,
कोई बोलावे तो करे किलकार । माता० ।।४।।

लाल ललाटे कीधो छे कुमकुम चांदलो,
शोभे जडित जाणे मरकतमणिमां लाल,
जननी जुगते आंजे अणियाली बेउ आंखडी,
सुन्दर काजलकेरुं टपकुं कीधुं गाल । माता० ।।५।।

साव सोनानुं जडित मणिमय पारणुं,
झूलवे झणणण बोले घुघरी नो घमकार,
माता विविध वचने हरखे गाये हालडां,
खेंचे कूमतियाली रेशमदोरी सार । माता० ।।६।।

१. पालना

माता यशोदा पुत्रको पालनेमें झुला रही हैं। लाड़ले पुरुषोत्तम आनन्दसे झूल रहे हैं। गोपियाँ देख देखकर हर्षसे बलि बलि जाती हैं। श्री नन्दजीके घरमें अत्यन्त आनन्द छाया हुआ है ॥१॥

हरिके मुखड़ेपर करोड़ों चन्द्र न्योछावर कर दूँ। उनके नयन सुन्दर कमलोंके समान हैं और भाल विशाल है। निर्मल नासिका दीपशिखा जैसी दमक रही है और कोमल अधर गहरे लाल रंगके हैं ॥२॥

देहकी कान्ति श्यामल मेघकी-सी है, भृकुटी बाँकी है, उभरे हुए ललाटपर घुँघराले केश झूमते हैं। हँसते समय दो दन्तुलियाँ हीरकनीकी तरह दिखाई देती हैं और मनोहर वेशको देखकर करोड़ों कामदेव लज्जित हो जाते हैं ॥३॥

कृष्णके गलेमें सोनेसे मढ़ा हुआ बघनख शोभित हो रहा है। कञ्चन और मोतियोंके छोटे-छोटे आभूषण हैं। हरि अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर चरणका अंगूठा चूस रहे हैं। जब कोई बुलाता है तो किलकारी लगाते हैं ॥४॥

लालके ललाटपर कुमकुमका लाल टीका लगाया गया है, जो मरकत मणिमें जड़े हुए लालके समान सुशोभित हो रहा है। माँने कुशलतापूर्वक बाँकी आँखोंमें काजल और गालपर सुन्दर काजलकी टिपकी लगा दी है ॥५॥

मणियोंसे जड़ा हुआ पालना सोनेका है, पूरे झुलानेपर उसमेंसे घुंघरुँओंकी ध्वनियाँ झन-झना उठती हैं। माता विविध प्रकारसे लोरी गा गाकर हर्षित होती है और पलनेकी फुन्देवाली रेशमडोरी खींचती है ॥६॥

हंस कारण्डव ने कोकिल पोपट पारणे,
बपैया ने सारस चकोर मेना मोर,
मूक्यां रमकडां रमवा श्री मोहनलालने,
घमघम घूघरडो वजाडे नन्दकिशोर । माता० ।।७।।

मारा कहानाने समाणी कन्या लावीशुं,
मारा लालने परणावीश मोटे घेर,
मारो जायो वरराजा थई घोडे बेशे,
मारो कहानो करशे सदाय लीला ल्हेर । माता० ।।८।।

मारो लाडकवायो सखा संग रमवा जशे,
सारी सुखलडी हुं आपीश हरिने हाथ,
जमवावेला रुमझुम करतो घरमां आवशे,
हुं तो धाईने भीडीश हृदया साथ । माता० ।।९।।

जेनो शंकर शेष सरीखा पार पामे नहीं,
"नेति, नेति" कहे छे निगम वारम्वार,
तेने नन्दराणी हुलरावी गाये हालडां,
नथी, नथी, एना भाग्यतणो कंई पार ! माता० ।।१०।।

व्रजवासी सौ सर्व थी सुभागी घणां,
तेथी नन्दजशोदा केरुं भाग्य विशेष,
ते सर्वेथी गोपीजननुं भाग्य अति घणुं,
जेनि करे प्रशंसा ब्रह्मा शिव ने शेष । माता० ।।११।।

धन्य ! धन्य ! व्रजवासी गोपीजन नन्दजसोमती !
धन्य ! धन्य! वृंदावन हरिकेरो ज्यां छे वास,
सदा जुगलकिशार ज्यहां लीला करे,
सदा बलिहारी जाये दयो दास ! माता० ।।१२।।

पलनेमें हंस, कारण्डव, कोकिल, तोता, पपीहा, सारस, चकोर, मैना, मोरके खिलौने मोहनलालके खेलनेके लिए रखे गए हैं। नन्दकिशोर अपने घुँघरुँओंको छम-छम बजाते हैं ।।७।।

माता यशोदा कहती हैं कि अपने कान्हाके योग्य ही मैं कन्या लाऊँगी और अपने लालको ऊँचे कुटुम्बमें ब्याहूँगी। मेरा बेटा वरराजा बनकर घोड़ेपर बैठेगा। मेरा कान्हा सदा ही आनन्द करेगा ।।८।।

मेरा लाड़ला अपने सखाओंके साथ खेलने जाएगा। मैं हरिके हाथ अपने सारे सुखोंको सौंप दूँगी। वह भोजनके समय रुमझुम करता घरमें आएगा और मैं दौड़कर उसे अपनी छातीसे लगा लूँगी ।।९।।

जिसका पार शंकर और शेष जैसे भी नहीं पा सकते, जिसे वेद बारम्बार नेति-नेति कहते हैं। उसे नन्दरानी झूला झुलाकर लोरियाँ गाती हैं। सचमुच उसके सौभाग्यकी कोई सीमा ही नहीं है ।।१०।।

ब्रजवासी सभीसे अधिक सौभाग्यशाली हैं। उनमें भी अधिक नन्द और यशोदाका सौभाग्य है। उन सबसे गोपीजनोंका भाग्य श्रेष्ठ है, जिसकी प्रशंसा ब्रह्मा, शिव और शेष भी करते हैं ।।११।।

ब्रजवासी, गोपीजन, नन्द और माता यशोदा धन्य हैं। जहाँ हरि निवास करते हैं वह वृन्दावन भी धन्य है। वहाँ युगलकिशोर सदा लीला-रत रहते हैं। दयादास सदा उनपर बलिहारी है ।।१२।।

———

२. गरबो रमवाने

गरबो रमवाने गोरी निसर्यां रे लोल,
राधिका रंगिली जेनुं नाम अभिराम व्रजवासणी रे लोल.
ताली देतां वागे झांझर झुंमखां रे लोल. ॥१॥
संगे साहेली बीजी छे घणी रे लोल,
कांई एक कहुं तेनां नाम व्रजवासणी रे लोल,
ताली देतां वागे झांझर झुंमखां रे लोल.
गिड गिड तोम छुम छुम छुम वाजे घुघरा रे लोल। ताली० ॥२॥
चन्द्रभागाने चन्द्रावली रे लोल,
चम्पकलता छे चारु रूप, व्रज०
ललिता विशाखा व्रजमंगला रे लोल,
माधवी ने मालती अनुप. व्रज० ॥३॥
मन्मथमोदा ने मनआतुरी रे लोल,
हंसा हर्षा ने हीरा नाम, व्रज०
केतकी प्रगल्भा प्रेममञ्जरी रे लोल,
ए आदे सखी सौ सुखधाम. व्रज० ॥४॥
विविधनां वाजीत्र वाजे छन्दमां रे लोल,
ताल स्वरे मली करे गान, व्रज०
लोल कहेतां अरुण अधर ओपता रे लोल,
लटके नमी मेलवे सहु तान. व्रज० ॥५॥
खेल मच्यो ते वृन्दावनमां लोल,
बंसीबट चोक रसरूप, व्रज०
गरबो जोवाने गिरधर आविया रे लोल,
मोह्या जोई श्यामानुं स्वरूप. व्रज० ॥६॥
ते प्रमाणे मोह्यां सामां शामनी रे लोल,
व्याप्यो बेहु अंगमां अनंग, व्रज०
ललिता लई मेलव्यां निकुञ्जमां रे लोल,
रसभर्यां रमाडचां रतिरंग. व्रज० ॥७॥
आनन्द सागर तांहां ऊछल्यो रे लोल,
मगन थयां लाडली ने लाल, व्रज०
परम पवित्र ए चरित्रने रे लोल,
दास दयो गाई थयो निहाल. व्रज० ॥८॥

२. गरबा खेलने

गौरी गरबा खेलनेके लिए निकली है; उसका नाम बहुत ही सुन्दर है—व्रजवासिनी राधिका रँगीली। गरवामें ताली देते समय झाँझर तथा झूमके बज रहे हैं ।।१।।

उसके साथ कई दूसरी सहेलियाँ हैं। उनके कुछ नाम बताता हूँ। ताली देते समय झाँझर और झूमके बज रहे हैं। गिड़ गिड़ ता छुम छुम छुम घुँघरू बज रहे हैं ।।।२।।

उनमें रूप सुन्दर चन्द्रभागा, चन्द्रावली, चम्पकलता हैं। ललिता, विशाखा, व्रजमंगला तथा माधवी और मालती हैं ।।३।।

मन्मथमोदा, मन आतुरी हंसा, हर्षा और हीरा हैं। केतकी, प्रगल्भा और प्रेममञ्जरी इत्यादि सखियाँ हैं। ये सभी सुखधाम हैं ।।४।।

नाना भाँतिके वाद्य और ताल सुरमें बज रहे हैं। सभी ताल, स्वरमें मिलकर गाती हैं। "लोल" शब्दका उच्चारण करते समय लाल ओंठ बड़े सुन्दर दिखाई देते हैं। लटकके साथ झुककर सभी तान मिलाती हैं ।।५।।

वृन्दावनमें खेल जमा है। बंसीवटका चौक रसरूप बन गया है। गरबा देखनेके लिए गिरिधारी आए हैं और श्यामाका रूप देखकर मोहित हो गये हैं ।।६।।

उसी तरह श्यामा भी मोहित हो गई। दोनोंके अंगमें अनंग व्याप्त हो गया। ललिताने दोनोंको कुञ्जमें ले जाकर मिला दिया। वहाँ उन्होंने रससे सराबोर रतिरंगकी क्रीड़ाएँ कीं ।।७।।

उस कुञ्जमें आनन्दका सागर उमड़ पड़ा। लाल और लाड़ली दोनों मग्न हो गए। इस परम पवित्र चरित्रको गाकर दास दयाराम निहाल हो गया ।।८।।

३. मोरली रम्य मनोहर वाई

मोरली रम्य मनोहर वाई, मनोहर वाई,
मोरली रम्य मनोहर वाई, मनोहर वाई....मोरली० (टेक)

भवत्रय ताप हर्यो रे साम्भलतां,
चञ्चल मन हरि चरणे जवलतां;
लाग्या ध्यास उदास प्रपञ्च थी. (२)
कमल नयन कमल वदन परम रसिक–
सप्तस्वर त्रण ग्राम वेद धूनी गाई....मोरली० ॥१॥

विधि सूर गहन गति नव जाणे,
शुक सनकादिक कीरति वखाणे,
तप करे शंकर नारद तुंमर (२)
सारीगम पधनीनीधपगरीसा ससारीरीरी
गगनरीरीरीरी संगीत चतुराई....मोरली० ॥२॥

श्रीहरिनो दया जरा रंग लाग्यो,
आ संसारनो भय सहु भाग्यो;
फरी फरी जनम नथी अवतरवुं (२)
श्रवण मनन हरि कीरतन भजन–
सेवन श्याम नाम नवनिधि सुखदाई....मोरली० ॥३॥

———

३. रम्य मनोहर मुरली बजी :

रम्य मनोहर मुरली बजी, मनोहर मुरली बजी। मुरली रम्य मनोहर बजी, मनोहर मुरली बजी।

इस मनोहर आवाजके कानमें पड़ते ही संसारके तापत्रय नष्ट हो गए और चञ्चल मन हरि चरणोंकी ओर झुकते हुए संसारके प्रपञ्चसे उदासीन बनकर ध्यानमें तल्लीन हो गया। सप्तस्वर, तीनग्राम युक्त ध्वनिमें स्वयं वेदने कमलके समान नेत्रवाले, कमलके समान मुखवाले परम रसिक भगवान कृष्णका गुणगान किया है ।।१।।

उनकी गहन गतिको ब्रह्मा तथा देवगण भी नहीं जानते। शुकदेव तथा सनकादिक उनकी कीर्तिका गान करते हैं। उन्हींके लिए शंकर तप करते हैं तथा नारद अपने तम्बूरे पर सारीगम पधनीनी धपगरीसा ससा-रीरीरी गगनरीरीरी रीरीके रूपमें संगीतकी चतुराईके साथ कीर्तिगान करते हैं।।२।।

कवि दयाराम कहते हैं कि भगवानका थोड़ासा रंग लगा और संसारके सभी भय दूर हो गए। बार-बार जन्म ग्रहण करनेके लिए अब इस संसारमें पुनः नहीं आना होगा। श्रवण, मनन, कीर्तन, भजन सभी रूपमें कृष्णनाम नवनिधियोंके सुखोंको देनेवाला है।।३।।

———————

४.रासलीला

वागे वृन्दावनमां वांसली रे, ऊभो ऊभो वगाडे कहान,
नादे वेधी मुनिवरपांसली रे, नव रही कोने सान... वागे० ।।१।।

तरुनी शाखाओ झुमी रही छे, चरणे नमवाने काज,
वेली वृक्ष साथे झुमी रही रे, भाग्य हमारां आज... वागे० ।।२।।

जमना नीर चाले नहीं रे, मृगने मन मोह थाय,
पंखी मालामां महाले नहीं रे, नाद सूणी न रहेवाय... वागे० ।।३।।

वाछरुं कान दईने सांभरे रे, करे नहीं पयपान,
गायो गाला तोडी त्यहां पले रे, नाद सूणवाने कान... वागे० ।।४।।

फूल्यां कमल जल टाटडी रे, दीसे ऊदियो रे भाण!
शंकर समाध मली रह्या रे, थयुं जगत ने जाण... वागे० ।।५।।

काने पडियो ते व्रजनी नारने रे, व्हालाजीनो रे नाद
तारुं पद पामे निज धामने रे, धाई गयां सौ साद... वागे० ।।६।।

एके नेपूर काने घालियुं रे, चरणे पहरी छे झाल,
एके कंकण माथे घालियुं रे, ऐवी थई छे बेहाल... वागे० ।।७।।

एके कुमकुम काजल रोलियुं रे, टपकुं कीधुं छे गाल,
एक खावुं घाल्युं अंचले रे, जोवा दीनदयाल... वागे० ।।८।।

एकना करमां कोलियो रे, पीती चाली एक नीर,
एक छोरुं रडतां मेली गई रे, चाली जमनाने तीर... वागे० ।।९।।

एकना स्वामीने मन आमलो रे, जावा दीधी नहीं नार,
कर जोडी कहे छे कामनी रे, "मने जावा दो निरधार...वागे० ।।१०।।

४. रासलीला

वृन्दावनमें बंशी बज रही है। कान्हा उसे खड़े-खड़े बजा रहा है। उसका नाद मुनिवरोंकी पसलियोंको भेदकर हृदय तक चला गया है। किसीको होश नहीं रहा है ।।१।।

चरणपर नमन करनेके लिए वृक्षकी शाखाएँ डोल रही हैं। वृक्षके साथ लताएँ झूम रही हैं और साथ ही हमारा भाग्य ।।२।।

यमुनाका नीर भी स्थिर हो गया है। पशुओंके मन भी मोहित हो उठे हैं। नाद सुनकर पक्षियोंसे अपने घोंसलेमें नहीं रहा जाता ।।३।।

बछड़े कान देकर बंशी-नाद सुन रहे हैं, उन्होंने दूध पीना छोड़ दिया है। गायें अपने बन्धन तोड़कर कानसे नाद सुननेको वहाँ दौड़ी जा रही हैं ।।४।।

जलके धरातलपर कमल खिल उठा, मानो उसने सूर्यके दर्शन किए हों। शंकर उस नादकी समाधिमें निमग्न हो उठे, किन्तु संसारको इसकी खबर न पड़ी ।।५।।

प्रियतमका बंशी-नाद ब्रजनारियोंके कानोंमें पड़ा। तेरा पद अपने ही घरमें, इसी लोकमें पानेके लिए सब ध्वनि सुनकर दौड़ी गईं ।।६।।

जल्दीमें एकने कानमें नूपुर पहना, तो दूसरीने चरणमें कर्णफूल। एकने कंकणको माथेमें डाला। सब इस प्रकार बेहाल हो गईं ।।७।।

एकने कुंकुम, काजल और रोलीका तिलक गालपर किया, एक दीनदयालको देखनेकी जल्दीमें भोजनको आँचलमें डालकर चल पड़ी ।।८।।

किसीके हाथमें कौर है, तो कोई जल पीती-पीती चली जा रही है। कोई बच्चेको रोता हुआ छोड़कर यमुनाके तीरकी ओर भाग चली ।।९।।

एकके पतिका मन ईर्ष्यासे भर उठा और उसने अपनी पत्नीको नहीं जाने दिया। उसकी पत्नी हाथ जोड़कर कहती है कि मुझे कृपा करके जाने दीजिए ।।१०।।

संगमांनी पोती सर्व भामनी रे, पछी बेठो घसवा हाथ,
रीस तजीने रीसालवे रे, दीन थई दीनानाथ...वागे० ॥११॥

सर्वे पहेली जई ते मली रे, तेनी देह पडी घर मांह्य
मोहनजीना अंगमां जई मली रे, थाय अचरज सहु त्यांह्य...वागे० ॥१२॥
कुलनो धर्म नथी ओ नारीओ, जाओ पोताने ठाम,
धन्य धन्य तमारी रीतने रे, मेल्यां घरनां ते काम!...वागे०॥ १३॥

आपणा घरनां ते काज न मूकीअे रे, आवी करीशुं काल,
वचन वहालाजीनं सांभली रे, गोपी बोल्यां सहु वहाल...वागे० ॥१४॥
"ह्यावां केम जईए मंदिर फरी रे, अमे तजीशुं तन,"
देखी गोपीजननी प्रीत शुं रे, हरख्या श्री भगवन...वागे० ॥१५॥
ह्यावां आवो आपण सहु मली रे, रमीए रुडेरो रास,
एक एक गोपी वच्चे नाथ ने रे, नीरखे रुडी पेरे पास...वागे० ॥१६॥
मांहो मांहे भरावी बाथने रे, कह्यो, "केम जईए घेर ?"
वचमां लीधा वली नाथ ने रे, रुप जुए रुडी पेर...वागे० ॥१७॥
विमासे श्याम ने श्यामनी रे, ऊरनी टूटी छे माल,
वाधी शरदपूनमनी रातडी रे, कीधी श्री र, गोपाल...वागे० ॥१८॥
लीला देखी कुञ्जधामनी रे, पवन थयो गतिभंग,
देवता वृष्टि करे प्रसन्न थई रे, देखी व्रजनो उमंग...वागे० ॥१९॥
ब्रह्मादिक जाणे जोइए जई रे लीला गोकुंलचंद,
जेम अभ्र विषे ओपाई छे रे, तारा वच्चे जेम इन्दु...वागे० ॥२०॥

ए रासलीला जे गाये ने सांभले रे, ते पामे निज धाम.
पातक सर्वे शमावजो रे, कहे जन दयाराम...वागे० ॥२१॥

———

संगवाली सारी स्त्रियाँ वहाँ पहुँच गई हैं।" उसका पति हाथ मलते बैठा ही रहा। ऐसी जो पत्नी थी, उसने अपना क्रोध छोड़ दिया। वह दीन भावसे दीनानाथके पास सबसे पहले पहुँचीं ।।११।।

वह मोहनसे तदाकार होकर मिली। उसका शरीर ही घरमें पड़े रहा। यह देखकर सबको अचम्भा हुआ ।।१२।।

कृष्ण समझाते है कि नारियों! यह तुम्हारा कुलधर्म नहीं है। तुम अपने घर लौट जाओ। तुम्हारी इस रीतिको धन्य है कि घरके सारे काम-काज ताकपर रख दिए ।।१३।।

अपने घरके कामोंको दूसरे दिन करनेकी आशा पर नहीं छोड़ना चाहिए।" प्रियतमके वचन सुनते ही सब गोपियां प्रेमपूर्वक बोलीं ।।१४।।

"अब हम वापस घर कैसे जाएँ? हम अपना शरीर यहाँ छोड़ेंगी।" गोपियोंकी ऐसी प्रीति देखकर श्री भगवान हर्षित हुए ।।१५।।

वे बोले कि आओ, हम सब मिलकर सुन्दर रास रचाएँ। हर एक गोपी अपने पास प्रियतमको अच्छी तरह निरख रही है ।।१६।।

वे गलबाँही देकर कहती हैं कि कहो, घर कैसे जाएँ? वे बीचमें कृष्णको लेकर उनका सुन्दर स्वरूप देख रही हैं ।।१७।।

श्याम और राधा मतवाले बन गए हैं और उनकी छातीकी मालाएँ टूट गई हैं। श्री गोपालने शरद पूनमकी रातको लम्बी बना दिया ।।१८।।

कुञ्जधामकी इस लीलाको देखकर पवनकी गति रुक गई। व्रजकी उमंगको देखकर देवता प्रसन्न होकर पुष्प-वृष्टि करने लगे ।।१९।।

ब्रह्मा इत्यादिने जाकर गोकुलचन्दकी लीला देखी। कृष्ण वैसे ही दिखाई देते हैं जैसे बादलोंकी ओटमें तारोंके बीच चन्द्रमा दिखाई देता है ।।२०।।

जो यह रास-लीला गाता और सुनता है, वह वैकुण्ठ-धाम पाता है। दयाराम कहते हैं कि इससे उसके सारे पातक मिट जाते हैं ।।२१।।

———————

५. आंखनां कामण

कामण दीसे छे अलबेला ! तारी आंखमा रे !
भोलुं भाख मा रे, कामण दीसे छे अलबेला !... ।।टेक।।

मन्द हसीने चित्तडुं चोर्युं, कुटिल कटाक्षे कालज कोर्यु,
अदपडियाली आंखे झीणुं झांखमा रे, भोलुं भाख ।...कामण०।।१।।

नखशिखरूप घणुं रढियालुं, लटकुं सघलुं कामणगारुं,
छानां खञ्जन राखे पंकज पांखमां रे, भोलुं भाख ।...कामण०।।२।।

व्हालभरी रसवरणी वाणी, तारुणीनुं मन ले छे ताणी,
भ्रुकुटीमां मटकावी भूरकी नांख मा रे, भोलुं भाख ।...कामण०।।३।।

दयाप्रीतम निरख्ये जे थाय ते में मुखडे नव कहेवाये,
आ विनती आतुरता आवडुं सांख मा रे, भोलुं भाख ।...कामण०।।४।।

----

५. आँखका जादू

ओरे अलबेले ! तेरी आँखमें जादू भरा हुआ है ! कुछ बोल मत, तेरी आँखमें जादू दिखाई देता है ।

तुमने मन्द-मन्द मुस्कराहटसे चित्त चुरा लिया है और कुटिल कटाक्षसे कलेजेको भेद लिया है। तुम अध-खुली आँखसे मेरी ओर मत देखो ।।१।।

तुम्हारा नखसे शिख तकका रूप अत्यन्त सुन्दर है । तुम्हारी सारी अदाएँ जादूसे भरी हुई हैं। तुम अपने पंकज पाँखमें खञ्जनोंको छिपाये हो ।।२।।

तुम्हारी रसीली वाणी प्यारसे भरी हुई है, वह तरुणियोंका मन चुरा लेती है। अरे, भौंहोंको मटकाकर भुरकी मत डाल ।।३।।

दयाराम कहते हैं कि प्रियतमको देखनेसे जो आनन्द होता है उसका वर्णन मुखसे नहीं किया जा सकता । विनय इतना ही है कि तुम आतुरता पूर्वक आँखोंमें समा जाओ ।।४।।

---

६. मोहनजीनी मोहनी

कीये ठामे मोहनी न जाणी रे, मोहनजीमां ।...।। टेक ।।

भ्रगुटीनी मटकमां के, भालवानी लटकमां,
के शुं मोहनी भरेली वाणी रे ।...मोहनजी०।।१।।

खीटलीयाला केशमां के, मदनमोहन वेशमां,
के मोरली मोहननी पीछाणी रे ।...मोहनजी०।।२।।

शुं मुखारविंदमां के, मन्द हास्य फन्द मां,
के कटाक्षे मोहनी वखाणी रे ।...मोहनजी०।।३।।

के शुं अंगेअंगमां के, ललित त्रिभंगमां,
के शुं अंगघेली करी स्याणी रे ।...मोहनजी०।।४।।

चपल रसिक नेनमां के, छानी छानी सेनमां,
के जोबननुं रूप करे पाणी रे ।...मोहनजी०।।५।।

दयाना प्रीतम पोते मोहनी स्वरुप छे,
तन मन धन हुं लूटाणी रे ।...मोहनजी०।।६।।

---

६. मोहनजीकी मोहिनी

मोहनजीमें मोहिनी किस स्थानपर है, यह मैं नहीं जान पाई।

यह मोहिनी भृकटीके मटकानेमें है या देखनेकी अदामें? या उनकी मीठी मीठी बातोंमें है? ॥१॥

वह मोहिनी घुंघराले बालोंमें है या मदन-मोहन वेशमें है? या मोहनकी मुरलीमें फिर उसे पहिचाना जा सकता है? ॥२॥

वह मोहिनी उनके मुखारविन्दमें है या मन्द-मन्द हास्यके फन्देमें है? या फिर वह मोहिनी कटाक्षमें भरी हुई है? ॥३॥

क्या वह अंग-अंगमें है या ललित त्रिभंगमें है? उसने सयानीको पागल कैसे बना दिया है ॥४॥

क्या वह मोहिनी चपल रसिक नयनोंमें है या गुपचुप किए जानेवाले इशारोंमें है? या यौवनके इस रूपमें है जो पानी-पानी बना देता है! ॥५॥

वास्तवमें दयारामके प्रीतम स्वयं मोहिनी-स्वरूप हैं। इसलिए मैं तन मन धनसे उनपर अपने आपको लुटा चुकी हूँ ॥६॥

७. घेली मुने कीधी !

घेली मुने कीधी श्रीनंदजीना नंदे ! घेली मुने कीधी ! ॥ टेक ॥

सखी रे, हुं तो जमनाजी गई हती पाणी,
त्यां में नन्दकुंवरने दीठो न लोभाणी,
अे पण मारा अन्तरनी वात गयो जाणी....घेली० ॥१॥

व्हालाजी हुंपें वांकी नजर वडे जोयुं,
साहेली, मारुं त्यारे तो अधिक मन मोह्युं
कालज मारुं कुटिल कटाक्षे प्रोयुं....घेली० ॥२॥

व्हाल वशीकरण भरी मीठी वाणी,
सूणी हुं तो मूल विना रे वेचाणी,
जाणे मन प्रीत-पीडा जायना वखाणी !....घेली० ॥३॥

सखी रे, एनी अलबेली आँख अणियाली,
रुपरसरंगनी भरेली रतनाली,
भूरकी नी भरी वांकी भ्रकुटी में भाली....घेली० ॥४॥

सखी ! अेनुं मुखडुं मदनमोहनकारी,
अंगो अंग माधुरी मनोहर भारी,
मन्द मन्द मधुरे हसी मुने मारी !....घेली० ॥५॥

नटवर ए नखशीख कामणे भर्यो छे,
आवडो रुपालो एने कोणे कर्यो छे ?
में तो मारा मन थकी एने वर्यो छे !....घेली० ॥६॥

७. मुझे बावली बनाया

श्रीनन्दजीके नन्दनने मुझे बावली बना दिया ! अरे, मुझे बावली बना दिया !!

सखि री ! मैं तो जमुनाजी पानी भरने गई थी । वहाँ मैंने नन्दकुँवरको देखा और मोहित हो गई । उन्होंने भी मेरे हृदयकी बात जान ली ।।१।।

प्रियतमने प्रेमभरी बाँकी चितवनसे मेरी ओर देखा । ओरी सखी, तब तो मेरा मन और भी अधिक मोहित हो गया । अपने कुटिल कटाक्षोंसे उन्होंने मेरा कलेजा छेद दिया है ।।२।।

प्यारभरी, मीठी वशीकरणयुक्त वाणी सुनते ही मैं बिना मूल्य बिक गई । प्रीतिकी वेदनाको मन ही जानता है । वह कही नहीं जा सकती ।।३।।

अरी सखी ! उनकी आँखें अलबेली, नुकीली हैं, रूप-रस-रंगसे भरी हैं, रतनारी हैं । मैंने उनकी जादू भरी तिरछी भौंहोंको देखा है ।।४।।

सखी ! उनका मुँह मदनको मोहित करनेवाला है । उनके अंग प्रत्यंगमें अत्यधिक माधुरी भरी हुई है । उन्होंने अपनी मन्द मन्द मधुर हँसीसे मुझे मार डाला ।।५।।

नटवरके नखसे शिखा तक जादू भरा है । अरे इतना रूपवान इसे किसने बनाया ? मैंने तो अपने मनसे इसे वर लिया है ।।६।।

सखी ! एनी मोरलीमां मोहनी भरी छे,
तेणे मुने घणी व्रेहविकल करी छे,
सखी ! मारी सुधबुध एणे हरी छे !....घेली० ॥७॥

कालजानुं दर्द नथी कोईने कहेवातुं,
लागी लाह्य रोमेरोम, नथी में रहेवातुं !
कर कशो उपाय, हवे नथी में रहेवातुं !....घेली० ॥८॥

तालावेली लागी, तरफडुं छुं, में मराशे,
केम करी मेलव्ये मोहन सुख थाशे,
लाजने लगाड परी ! जीव मारो जाशे !....घेली० ॥९॥

विरह वह्निमां बले छे समझी गई साहेली,
खानपान भान कशुं नथी, लाज मेली,
रखे एनी थाय अवस्था छेल्ली !....घेली० ॥१०॥

एवे समे दयाना प्रीतमजी पधार्या,
अंक भरी कुञ्जसदनमां सधार्या,
आप्यो आनन्द, व्रेहताप सौ निवार्या !....घेली० ॥११॥

————

हे सखी ! उसकी मुरलीमें मोहिनी भरी है। उसने मुझे विरहसे विकल कर दिया है। सखी ! मेरी सुधबुध उसने हर ली है ।।७।।

कलेजेका दर्द किसीसे कहा नहीं जाता । हे राम ! रोम-रोममें आग लगी है, मुझसे रहा नहीं जाता। कोई उपाय करो, अब मुझसे रहा नहीं जाता ।।८।।

मैं तड़प रही हूँ। अरे मैं मर जाऊँगी । किसी भी प्रकार मोहनसे मिला तभी मुझे सुख मिलेगा। लज्जाको छोड़, नहीं तो मेरे प्राण चले जाएँगे ।।९।।

सखी समझ गई कि यह विरहमें जल रही है। इसे खानपानका कुछ ख्याल नहीं, इसने लज्जा भी दूर बहा दी है। शायद यह इसकी अन्तिम दशा है ।।१०।।

इसी समय दयारामके प्रियतम आ गए और उस गोपीको गोदमें उठाकर कुञ्जसदनमें चले गए। उसे आनन्द देकर कृष्णने उसके सारे विरहतापको दूर कर दिया ।।११।।

---

८. कालज कोर्युं

कालज कोर्युं ते कोने कहीये रे, ओधव ! छेल छबीलडे ?

वेमी होय तो वढतां रे फावीए,
पण प्राणथी प्यारो एने लहीए रे ! ओधव...॥१॥

धीखीए ढांक्यां ते कह्यो नव शोभीए,
डाह्यां शुं वाह्यां नाने छैये रे ! ओधव...॥२॥

सोडनो घाव मार्यो स्नेही शामलिये !
किया राजाने रावे जईए रे ! ओधव...॥३॥

कल न पडे, कांई पेर न सूझे !
रात दिवस घेलां रहीए रे ! ओधव...॥४॥

कांई वस्तुमां क्षण चित्त न चोंटे !
अलबेलो आवी बेठो हैये रे ! ओधव...॥५॥

दयाना प्रीतमजी ने एटलुं जई कहेजो,
क्यां सुधी आवां दुःख सहीए रे ! ओधव...॥६॥

———————

८. कलेजा छेद डाला

उद्धवजी ! छैल छबीलेने तो कलेजा ही छेद डाला, यह बात हम किससे कहें ?

बैरी हो तो उससे झगड़ा भी करें लेकिन यह तो प्राणोंसे भी प्यारा है ।।१।।

अन्दर ही अन्दर जलते रहें--कहना भी तो शोभा नहीं देता ।।२।।

स्नेही साँवलियाने बगलकी पसलियों तकमें घाव किया है । किस राजाके पास जाकर शिकायत करें ? ।।३।।

चैन नहीं पड़ती--कुछ उपाय ही नहीं सूझता । रात दिन बावरे बने रहते हैं ।।४।।

अब किसी भी चीजमें दिल नहीं लगता—अलबेला जो हृदयमें आ बैठा है ।।५।।

दयारामके प्रियतमजीसे जाकर इतना कह देना कि इस तरह हम कहाँ तक दुःख सहते रहेंगे ।।६।।

९. मारुं

आठ कुवाने नव वावडी रे लोल, सोलसें पनिहारीनी हार,
मारा वालाजी हो, हावां नहि जाउं मही वेचवा रे लोल । टेक
सोना ते केरुं मारुं बेडलुं रे लोल उढेणी रत्न जडाव ... मारा० ॥१॥

केड मरडीने घडो मे भर्यो रे लोल,
तुटयो मारो नवसर हार ... मारा० ॥२॥

कांठ ते उभो कहानजी रे लोल,
भाई मने घडुलो चह्डाव ... मारा० ॥३॥

हुं तुने घडुलो चडावुं रे लोल,
थाय मारा घर केरी नार ... मारा० ॥४॥

तुज सरखा गोवालिया रे लोल,
ते तो मारा बापना गुलाम ... मारा० ॥५॥

तुज सरखी गोवालणी रे लोल,
ते तो मारा पगनी पेजार ... मारा० ॥६॥

दयाना प्रीतम प्रभु पातला रे लोल,
ते तो मारा प्राणना आधार ... मारा० ॥७॥

९. मेरा

आठ कुएँ और नौ बावड़ियाँ हैं, और है सोलह सौ पनिहारिनोंकी कतार। मेरे प्रियतम मैं दही बेचने अब नहीं जाऊँगी।

मेरा घड़ा सोनेका है और गेंडूरी (घड़ेके नीचे रखी जानेवाली कपड़ेकी गोल घेरा) रत्नजटित है ॥१॥

मैंने कमर मोड़कर घड़ा भरा है जिसमें मेरा नौलड़ियोंवाला हार टूट गया है ॥२॥

तटपर कान्हा खड़ा था। उसे देख मैंने कहा कि भाई जरा घड़ेको सिरपर उठा दो ॥३॥

उसने कहा—तू मेरी घरकी नार (पत्नी) बन जा, तो मैं तेरा घड़ा चढ़ाऊँ ॥४॥

मैंने कहा—तेरे जैसे ग्वाले तो मेरे पिताके गुलाम हैं ॥५॥

उसने कहा—तेरी जैसी ग्वालिन मेरे पैरकी जूती है ॥६॥

दयारामके प्रभु छरहरे बदनके हैं और वे ही मेरे प्राणाधार हैं ॥७॥

———

१०. हुं शुं जाणुं

हुं शुं जाणुं जे व्हाले मुजमां शुं दीठुं,
वारे वारे सामुं भाले, मुख लागे मीठुं.... हुं शुं० ॥टेक॥

हुं जाऊं जल भरवा त्यां पुंठे पुंठे आवे,
वगर बोलाव्यो व्हालो बेडलुं चडावे.... हुं शुं० ॥१॥

वढुंने तरछोडुं तोए रीस न लावे,
कांई कांई मीसे मारे घेर आवीने बोलावे.... हुं शुं० ॥२॥

दूरथी देखीने मने दोडचो आवे दोटे,
पोतानी माला कहाडी पहेरावे मारी कोटे.... हुं शुं० ॥३॥

एकलडी देखे त्यां मुने पावले रे लागे,
रंक थईने कांई कांई मारी पासे मागे.... हुं शुं० ॥४॥

(मुने) जयां जयां जाती जाणे, त्यां त्यां ए आडो आवी ढुंके,
बेनी दयानो प्रीतम मारी केड नव मूके.... हुं शुं० ॥५॥

---

१०. मैं क्या जानूँ

मुझे क्या पता कि प्रियतमने मुझमें क्या देखा है ? वह बार बार मेरी ओर देखता है। मेरा मुख उसे मधुर लगता है।

मैं जब पानी भरने जाती हूँ, तो वह मेरे पीछे-पीछे आता है। वह प्रियतम बिना कहे मेरा घड़ा चढ़ा देता है ॥१॥

मैं उसे झिटकारती हूँ, फटकारती हूँ, फिर भी उसे बुरा नहीं लगता। किसी न किसी वहाने वह मेरे घर आकर मुझे बुलाता है ॥२॥

मुझे दूरसे देखकर वह दौड़ता हुआ पास चला आता है और कभी-कभी अपनी माला निकालकर मेरे गलेमें पहना देता है ॥३॥

मुझे अकेली देखकर वह मेरे पैरों पड़ता है और रंक बनकर मुझसे कुछ-कुछ माँगता रहता है ॥४॥

मुझे जहाँ-जहाँ जाती हुई देखता है, वहाँ-वहाँ आड़े आकर वह झाँकता है। सखि, दयारामका यह प्रियतम किसी तरह मेरा पीछा नहीं छोड़ता ॥५॥

११. व्रज वहालुं रे

व्रज वहालुं रे वैकुंठ नहीं आवुं,
मुने ना गमे रे चतुर्भूज थावुं,
त्यां श्री नन्दकुंवर कयांथी लावुं..... व्रज वहालुं रे ।।१।।
जोईए ललित त्रिभंगी मारे गिरिधारी,
संगे जोईए श्री राधा प्यारी,
ते विना नव ठरे आंख मारी..... व्रज वहालुं रे ।।२।।
त्यां श्री जमुना गिरिवर छेनी,
मुने आसक्ति छे ए बेनी,
ते विना मारो प्राण प्रसन्न रे नी..... व्रज वहालुं रे ।।३।।
त्यां श्री वृन्दावन रास नथी,
व्रज वनिता संग विलास नथी,
विष्णु वेणु नाद अभ्यास नथी..... व्रज वहालुं रे ।।४।।
ज्यां वृक्ष वृक्ष वेणुधारी,
पत्रे पत्रे हरि भुज चारी,
एक व्रज रज चो मुक्तिवारी..... व्रज वहालुं रे ।।५।।
ज्यां वसवाने शिव सखी रूप थया,
हजु अज व्रज रज ने तरसता रया,
उद्धव सरखा तृण कृष्ण मया..... व्रज वहालुं रे ।।६।।
सुख स्वर्ग तुं कृष्ण विना कडवुं,
मुने नां गमे ब्रह्म सदन अडवुं,
धिक सुख जेने पामी पडवुं..... व्रज वहालुं रे ।।७।।
शुं करुं श्रीजी हुं सायुज्य पामी,
एकतामां तमो नां रहो स्वामी,
मारे दासपणामां शी खामी..... व्रज वहालुं रे ।।८।।
व्रज जन वैकुण्ठ सुख जोई वल्यां,
ना गम्युं ब्रह्मसदनमांहे भल्यां,
घेर स्वरूपानन्द सुख अति शें गल्यां..... व्रज वहालुं रे ।।९।।
गुरुबल गोकुलवासी थाशुं,
श्री वल्लभशरणे नित्य थशुं,
दया प्रीतम सेवी रस जश गाशुं..... व्रज वहालुं रे ।।१०।।

११. ब्रज प्यारा रे

मुझे ब्रजही अत्यन्त प्रिय है, मैं वैकुण्ठ नहीं आऊँगा । चतुर्भुज होना भी मुझे पसन्द नहीं है । भला उस वैकुण्ठमें मैं नन्दकुँवरको कहाँसे लाऊँगा ? ।।१।।

मुझे तो ललित, त्रिभंगी, गिरिधारी चाहिए, और साथमें उनकी प्यारी राधा चाहिए । उनके बिना मेरी आँखें तृप्त नहीं हो सकतीं ।।२।।

उस ब्रजमें श्री यमुना तथा गिरिवर गोवर्धन हैं । इन दोनोंमें ही मुझे बड़ी आसक्ति है । इनके बिना मेरे प्राण प्रसन्न नहीं रह सकते ।।३।।

उस वैकुण्ठ लोकमें वृन्दावनकी रासक्रीड़ा नहीं है, ब्रजकी वनिताओंके साथ कृष्णका विलास नहीं है । उस वैकुण्ठवासी विष्णुको वेणुवादनका अभ्यास भी तो नहीं है ।।४।।

जिस ब्रजका प्रत्येक वृक्ष वेणुधारी श्रीकृष्ण है, प्रत्येक पत्तेमें हरिका चतुर्भुज रूप है, उस ब्रजके एक एक रजकणपर वैकुण्ठकी मुक्ति न्योछावर है ।।५।।

ब्रजमें बसनेके लिए शिवने सखी रूप धारण किया । ब्रह्मा आज भी उसकी रजके लिए तरस रहे हैं । वहाँके तृण भी उद्धवके समान कृष्णमय हैं ।।६।।

कृष्णके बिना स्वर्गका सुख भी कड़ुवा है । उनके बिना वैकुण्ठके ब्रह्म-सदनका स्पर्श भी मुझे पसन्द नहीं है । जिस सुखको पाकर भी पतन हो, उसको धिक्कार है ।।७।।

हे श्री जी ! सायुज्य (मुक्ति) को पाकर भी मैं क्या करूँगा ? हे स्वामी ! उस एकतामें तो आप नहीं रहेंगे । तब मेरे इस दास भावमें क्या कमी है, भगवन् ? ।।८।।

ब्रजके लोग वैकुण्ठका सुख देखकर लौट आए, मिला हुआ ब्रह्मलोक उन्हें अच्छा नहीं लगा । घर पर रहते हुए कृष्ण स्वरूप-दर्शनके आनन्दका "सुख" उन्हें अतिशय अच्छा लगा ।।९।।

गुरुकी कृपाके बलसे गोकुलनिवासी बनूँगा, श्री वल्लभाचार्यजी के शरणमें निरन्तर रहूँगा । कवि दयाराम कहते हैं कि प्रियतम श्रीकृष्णकी सेवाकर रसपूर्वक उनकी कीर्तिका गान करूँगा ।।१०।।

———————

१२. श्याम रंग समीपे न जावुं

श्याम रंग समीपे न जावुं, मारे आज थकी,
श्याम रंग समीपे न जावुं... (टेक)

जेमां कालाश ते सहु एक सरखुं, सरवमां कपट हशे आवुं,
मारे...।।१।।

कस्तुरीनी बिन्दी करुं नहीं, काजल नां आंखमां अंजावुं.
मारे...।।२।।

कोकिलानो शब्द सुणुं नहीं, कागवाणी शकुनमां न लावुं.
मारे...।।३।।

नीलाम्बर काली कञ्चुकी न पहेरुं, जमनाना नीरमां न नहावुं.
मारे...।।४।।

मरक्त मणि ने मेघ दृष्टे न जोवा, जांबु वंत्याक ना खावुं.
मारे...।।५।।

दयाना प्रीतम साथे मुखे नीम लीधो, पण मन कहे (जे) पलक—
ना निभावुं. मारे...।।६।।

१२. श्याम रंगके पास नहीं जाऊँ

मैं कृष्ण वर्णके पास नहीं जाऊँगी, आजसे मैं कृष्ण वर्णके पास नहीं जाऊँगी ।

जिनमें कालापन है, वे सभी एक समान होते हैं, उन सभीमें ऐसा ही कपट भरा रहता है ।।१।।

काली कस्तूरीकी बिंदी नहीं लगाऊँगी, काले काजलको आँखोंमें नहीं आँजूँगी ।।२।।

काली कोयलके शब्द नहीं सुनूँगी, काले कौवैकी वाणीको शकुन-रूपमें नहीं मानूँगी ।।३।।

नीली साड़ी तथा काली कञ्चुकी नहीं धारण करूँगी । यमुनाके काले जलमें स्नान भी नहीं करूँगी ।।४।।

मरकत मणि तथा मेघकी ओर दृष्टि नहीं जाने दूँगी । श्यामवर्ण के जामुन तथा बैंगन भी नहीं खाऊँगी ।।५।।

दयाके प्रियतमके बारेमें मुखसे तो मैंने यह नियम ले लिया है, परन्तु मन कहता है कि मैं तो कृष्णके बिना एक पल भी नहीं निभा सकता ।।६।।

१३. वेरण वांसलडी

ओ वांसलडी! वेरण थई लागी रे, व्रजनी नार ने,
शुं शोर करे? जातलडी तारी तुं मन विचारने.
तुं जंगल काष्ठतणो कटको, रंगरसिये कीधो रंगचटको,
अली, ते पर आवडो शो लटको? ओ वांसलडी! ॥१॥
तने कहानवर करमां राखे, तुं अधरतणा रस नित्य चाखे,
तुं तो अमने दुःखडां बहु दाखे, ओ वांसलडी! ॥२॥
तुं मोहनना मुखपर महाले, तुज विना नाथने नव चाले,
तुं तो शोक्य थई अमने साले, ओ वांसलडी! ॥३॥
हुं तुजने आवी नव जाणती, नहि तो तुज पर म्हेर न आणती,
तारां डाल साहीने मूल ताणती, ओ वांसलडी! ॥४॥
दया प्रीतमने पूरण प्यारी, तुंने अलगी न मूके मुरारी,
तारा अवगुण दीसे भारी, ओ वांसलडी! ॥५॥

१३. बैरिन बाँसुरी

री बाँसरी ! तू ब्रज-नारियोंकी दुश्मन बन बैठी है। क्या शोर मचाती है ? किस जातिकी तू है, जरा मनमें विचार तो कर। तू जंगलके काठका टुकड़ा, रंगरसिएने तेरा रंग चटक बना दिया। बस इसपर तेरा इतना नखरा ? ॥१॥

तुझे कन्हैया हाथमें लिये रहता है, तू नित्य उनका अधरामृत चखती है। तू हमको बहुत दुःख देती है, री बंसरी ! ॥२॥

तू मोहनके मुखपर मौज उड़ाती है। तेरे बिना नाथका काम नहीं चलता। री बाँसरी, तू सौत बनकर हमको सताती है ॥३॥

मैं तुझे ऐसी नहीं जानती थी, वर्ना तुझपर दया नहीं करती। मैं तेरे मूलोंको शाखाओं सहित उखाड़ फेंकती ॥४॥

दयारामके प्रियतमकी तू बहुत प्यारी है। प्रभु तुझे जरा भी दूर नहीं रखते। री बाँसुरी ! तेरे अवगुण भी भारी दिखाई देते हैं ॥५॥

---

१४. वांसलडीनो उत्तर

ओ व्रजनारी! शा माटे तुं अमने आल चडावे?
पुण्य पूरबतणां, तेथी पातलियो अमने लाड लडावे.
में पूरण तप साध्यां वनमां, में टाढतडका वेठ्यां तनमां,
त्यारे मोहने महेर आणी मनमां, ओ व्रजनारी! ।।१।।
हुं चोमासे चाचर रहती, घणी मेघझडी शरीर सहेती,
सुख दुःख कांई दिलमां नव लहेती, ओ व्रजनारी! ।।२।।
मारे अंगे वाढ वढाविया, वली ते संघाडे चडाविया,
ते उपर छेद पडाविया, ओ व्रजनारी! ।।३।।
त्यारे हरिए हाथ करी लीधी, सौ कोमां शिरामणि कीधी,
देह अर्पी अर्ध अंग दीधी. ओ व्रजनारी! ।।४।।
माटे दयाप्रीतमने छुं प्यारी, नित्य मुखथी वगाडे मूरारि,
मारा अवगुण दीसे भारी! ओ व्रजनारी! ।।५।।

१४. बाँसुरीका उत्तर

ओ ब्रजनारी ! तू मुझे दोष क्यों देती है ? यह तो पूर्व जन्मके पुण्य हैं कि पातलिया (छरहरा) प्रियतम मुझसे लाड़ लड़ाता है।

मैंने वनमें पूर्ण तपश्चर्या की है। शरीरसे सरदी-धूप सही है। तभी तो, ए ब्रजनारी, मोहनने मुझपर कृपा की है ।।१।।

मैं चार महीनेतक खुलेमें रहकर शरीरपर मूसलधार वृष्टि झेलती रही हूँ। हे ब्रजनारी ! मैं मनमें सुख-दुःखकी कोई परवाह नहीं करती थी ।।२।।

मैंने अंगोंपर घाव लगवाए हैं उसे, खराद पर चढ़वाया है और उसके बाद उसमें छेद छिदवाए है ।।३।।

तब तो हरिने मुझे (मुरलीको) हाथमें उठाया है और सबमें शिरोमणि बनाया है। मैंने पूरी देह सौंप दी, तब मुझे अर्द्धांग मिला है ।।४।।

इसलिए मैं दयारामके प्रीतमको अधिक प्यारी हूँ। मुरारी नित्य अपने मुखसे मुझे बजाते हैं। ब्रजनारी ! इसीलिए मेरे अवगुण भी भारी हैं ।।५।।

———————

१५. मारुं मन मोहचुं

म्हारुं मन मोहचुं वांसलडीने शब्द कानड काला,
हुं तो घेली थई, म्हारा घरमां नथी गमतुं म्हारा व्हाला (टेक)

बे अधर उपर वाजे छे सुणी अन्तर म्हारुं दाझे छे,
एहनो शब्द गगनमां गाजे छे..... म्हारुं मन मोहचुं ।।१।।

ए वनमां ज्यारे वागे छे, मुने बाण सरीखो लागे छे,
मुने विरहनी वेदना जागे छे..... म्हारुं मन मोहचुं ।।२।।

हुं तो दोहोतां दोणी भूली छुं, वली जमतां अधुरी झूली छुं,
त्हारुं मुख जोई जोई हुं फुली छुं..... म्हारुं मन मोहचुं ।।३।।

एणे तपनी साधना कीधी छे, कृष्णे कृपासाध्य करी दीधी छे,
माटे दयाप्रीतमे कर लीधी छे..... म्हारुं मन मोहचुं ।।४।।

१५. मेरा मन मोह लिया

काले कन्हैयाने बंसी-नादसे मेरा मन मोह लिया है। मैं तो पगली हो गई हूँ। हे प्रिय, मुझे मेरे घरमें अच्छा नहीं लगता।

वह दोनों अधरोंपर बज रही है। उसे सुनकर मेरा हृदय तड़प उठता है। अरे, उसका शब्द गगनमें गूंज रहा है ॥१॥

जब वह वनमें बजती है तो मुझे बाणकी तरह भेद देती है ॥२॥

बंसीकी आवाज सुनकर मैं दूध दुहते-दुहते दूहना भूल गई हूँ और भोजन करते-करते उठ खड़ी हुई हूँ। प्रियतम, तेरा मुख देख-देखकर मैं प्रसन्नतासे फूल उठी हूँ ॥३॥

उस बंसीने तप-साधना की है, इसलिए कृष्णने उसे कृपा-पात्र बना लिया है और इसीलिए दयारामके प्रियतमने उसे अपने हाथमें पकड़ा है ॥४॥

१६. नमेरो नंदनो छोरो

उद्धव नन्दनो छोरो ते नमेरो थयो जो,
मुने एकली मुकीने मथुरां गयो जो..... उद्धव० ॥१॥

एने मूकी जातां दया नव उपनी जो,
मुने भ्रान्ति पडी छे एना रुपनी जो..... उद्धव० ॥२॥

कोईए कामण कर्युं के फटकार्यो फरे जो,
केम दील एनुं मुज उपर ना ठरे जो..... उद्धव० ॥३॥

उद्धव सन्देशो कहीने वेहेला आवजो जो,
साथे दयाना प्रीतमने तेडी लावजो जो..... उद्धव० ॥४॥

———————

१६. निर्मोही नन्दका छोरा

उद्धवजी, वह नन्दका छोरा निर्मोही हो गया है। देखो तो, वह मुझे अकेली छोड़कर मथुरा चला गया है ।।१।।

मुझे छोड़कर जाते समय उसके मनमें दया तक नहीं आई। इधर मैं उसके रूपमें दीवानी हो गई है ।।२।।

क्या किसीने उसपर कोई जादू-टोना कर दिया है या किसीने फटकार दिया है जिससे कि वह दूर-दूर फिरता है? उसका दिल मुझपर क्यों नहीं ठहरता ।।३।।

देखो उद्धवजी, मेरा सन्देशा पहुँचाकर जल्दी आ जाना और साथमें दयारामके प्रीतमको भी बुलाकर ले आना ।।४।।

———

१७. सखी, हुं तो जाणती जे.....

सखी, हुं तो जाणती जे सुख हशे स्नेह मां । (टेक)

हुं शुं जाणुं जे प्राण परवश पडशे, अग्नि उठशे आखी देहमां,
पीडा पामेरे, परो थवो न भावे, जादुडो एवो जे कांई एहमां ।
सखी. . . . ।।१।।

रुप ने गुण सहु ते तेमां देखे, जेनुं मन मान्युं जेहमां,
स्वाधीनने पराधीन करी नांखे, नेह विना एह बल केहमां ।
सखी. . . . ।।२।।

हुं दुःखी य्हां (इहां), ने वहालो विकल त्यां, सुखी नां मले कोई बेहमां,
दयाना प्रीतम सदा समीप वसे तो भीजी रहुं आनंदनां मेहमां ।
सखी. . . . ।।३।।

१७. सखी मैं तो जानती थी

सखि ! मैं तो मानती थी कि स्नेहमें सुख होगा।

मुझे क्या पता कि उसके कारण प्राण परवश हो जाएँगे और सारी देहमें ज्वालाएँ उठने लगेंगी। पीड़ा हो रही है, फिर उससे दूर हटना अच्छा नहीं लगता; इस प्रेममें कुछ ऐसा जादू है ।।१।।

जिसका मन जिससे लग गया वह उसीमें रूप-गुण सब कुछ देखता है। प्रेम स्वाधीनको पराधीन कर डालता है। सिवा स्नेहके भला यह सामर्थ्य किसमें है ? ।।२।।

यहाँ मैं दुःखी हूँ, और प्रियतम वहाँ विकल हैं। हम दोनोंमेंसे कोई सुखी नहीं है। दयारामके प्रियतम यदि हमेशा समीप रहें, तो मैं आनन्दकी वर्षामें सदा भींगा करूँगी ।।३।।

१८. व्हाले तो विसारी अमने मेहल्यां

ओ उद्धवजी, व्हाले तो विसारी अमने मेहल्यां
अमो शुं कहीये ? रास रमाडी, तेडीने तरछोडचां. (टेक)

प्हेल व्हेली प्रीत अमशुं कीधी, मुरलीमां एणे वश करी लीधी
गोपी सौने विह्वल करी दीधी, ओ उद्धवजी... ॥१॥

प्रीतलडी तो करतां पहेली, प्रभु देखीने थई छुं घेली,
पण मलो मोहन अमने मन मेली, ओ उद्धवजी... ॥२॥

एणे हैडांनां तो हरि लीधां, कांनुडे तो कामण कीधां,
घेर घेर दधी मांखण पीधां, ओ उद्धवजी... ॥३॥

ए कानुंडो कामण गालो, एनी आंखलडीनो छे चालो,
प्रीतिवन्त शुं प्रीत थी निहालो, ओ उद्धवजी... ॥४॥

पेली कुबजा तो कामणगाली, तेनी साथे लागी बहु ताली,
एणे वश कीधा छे वनमाली, ओ उद्धवजी... ॥५॥

अमे सांमलीयानी संगे रमतां, व्रज वन वनमां पूंठल भमतां,
अमो भेलां बेसीने भोजन जमतां, ओ उद्धवजी... ॥६॥

मथुरामां जई एणे कंश रोल्यो, एक आंगलीये गोवर्धन तोल्यो
सत्य वची अन्याक्ति बोल्यो, ओ उद्धवजी... ॥७॥

दयारामना स्वामीने केहेजो, मथुरां मुकी दै गोकुल रहेजो
सौ गोपिकाने दरशन देजो, ओ उद्धवजी... ॥८॥

———

१८. प्रियतम तो हमको भुलाकर चला गया

ओ उद्धवजी, प्रियतम तो हमको भुलाकर चला गया। पहले तो रासक्रीड़ाएँ कीं और फिर छोड़ दिया; प्यारसे बुलाकर दुत्कार दिया।

पहले उसने हमसे प्रीति की, मुरलीमें हमें कैद कर लिया और जितनी गोपियाँ थीं उन्हें विह्वल कर डाला ।।१।।

प्रियतमने पहली प्रीति की, तो मैं उसे देखकर बावली हो गई। मोहन तब हमसे दिल खोलकर मिला था ।।२।।

अरे, कन्हैयाने मेरा हृदय चुरा लिया है और हमपर जादू कर दिया है। ओ उद्धवजी, उसने घर-घरमें दही-मक्खन खाया है ।।३।।

यह कन्हैया बड़ा जादूगर है। जादू उसकी आँखका खेल है। वह प्रेमीकी ओर बड़े प्रेमसे देखता है ।।४।।

और वह कुब्जा भी बड़ी जादूगरनी है। उसके साथ प्रियतमका दिल बहुत रम गया है। उसने वनमालीको वशमें कर लिया है ।।५।।

ओ उद्धवजी, हम श्यामके साथ खेले थे। व्रजके वनोंमें उसके पीछे घूमा करते थे। भोजन भी हम साथ-साथ किया करते थे ।।६।।

प्रियतमने मथुरामें कंसको मारा, अंगुली पर गोवर्धन उठाया। ऐसा वह सत्यवचनी अन्य बात कैसे बोला? ।।७।।

हे उद्धव, दयारामके स्वामीसे कहना कि मथुरा छोड़ दें, गोकुलमें आकर रहे तथा सभी गोपिकाओंको दर्शन दे ।।८।।

———————

१९. प्रेमनी पीड़ा

प्रेमनी पीड़ा ते कोने कहिये रे, हो मधुकर, प्रेमनी पीडा ते . . . . . ।

थातां न जाणी प्रीत जातां प्राण जाये,
हाथनां कर्यां ते वाग्यां हईए रे, हो मधुकर०. . ।।१।।

जेने कहिये ते तो सरवे कहे मुरख,
पस्तावो पामीने सही रहिये रे, हो मधुकर०. . ।।२।।

धीकीये ढांक्यां रातदिवस अंतरमां,
भूख निद्रामां नव लहिये रे, हो मधुकर०. . ।।३।।

हुं अहीं दु:खीने व्हालो सुखमांहे माहाले,
पण समोवडच कांई टहाडां थईए रे, हो मधुकर०. . ।।४।।

दाझ्या उपर लूण दीधुं ए दामोदरे,
पेली सोकलडी सुणीने कालज दहिये रे, हो मधुकर०. . ।।५।।

अबलानो अवतार ते पराधीन,
रंक कल्पीये पण कहां जईए रे, हो मधुकर०. . ।।६।।

स्नेहनो दझाडो घणो मरणथकी माठो,
शुं करिये वाढयां तेने वहिये रे, हो मधुकर०. . ।।७।।

दयाप्रभु आवे तो तो सद्य सुख थाये,
मुने दु:ख दीधुं ए नन्दजीने छैये रे, हो मधुकर०. . ।।८।।

———

१९. प्रेमकी पीड़ा

रे मधुकर! प्रेमकी पीड़ाको किससे कहा जाय ?

जब प्रीति हुई तो कुछ मालूम नहीं पड़ा; लेकिन जब वह जाने लगी तो प्राण ही जाने लगे। हाथका किया तो भुगतना ही पड़ेगा ॥१॥

जिनसे कहती हूँ वे सभी मूर्ख ठहराते हैं। भला अब पछताकर सह लेनेके अलावा क्या उपाय है ? ॥२॥

रात-दिन अन्दर-ही-अन्दर जलते रहना और भूख तथा नींदको खो बैठना, बस यही बाकी बचा है ॥३॥

यहाँ मैं दुःखी हूँ और उधर प्रियतम सुखमें मगन हैं। अतः हम दोनों समान रूपसे सुखकी शीतलताका अनुभव नहीं कर पाते ॥४॥

इतना ही नहीं, दामोदरने जलेपर नमक छिड़का है। उस सौत बंसरीको बजाते सुनकर कलेजा धधकता है ॥५॥

अबला जन्म ही पराधीन है। हम रंक खूब रोते कलपते हैं, पर कहाँ जा सकते हैं ? ॥६॥

स्नेहकी जलन तो मौतसे भी ज्यादा कठिन होती है। क्या करें, जो किया है उसको भुगतना ही पड़ेगा ॥७॥

अब तो दयारामके प्रभु आ जाएँ तो तुरन्त सुख हो जाए। मुझे इस नन्दजीके छोकरेने बहुत दुःख दिया है ॥८॥

२०. प्रेम-परीक्षा

उद्धवजी (ओधवजी) छे अलगी रे, वात (एक) ए प्रेमतणी;
कोई अनुभवी जाणे रे, कहेतां ना आवे बणी ।।१।।

प्रसुतानी पीडा रे, वंझा ते शुं जाणे ?
जाण्युं केम आवे रे, माण्याने परमाणे ।।२।।

मूग साकर खाधी रे, गुंगाने स्वपंन थयुं;
सरव मन जाणे रे, बीजाने नव जाय कहयुं ।।३।।

घायलना दुःखने रे, कायर ते तो शुं प्रीछे;
एम ज्ञानी लहे नहीं रे, रतिनी गति शी छे ।।४।।

नेम सघला नासे रे, प्रेम ज्यारे व्यापे;
जेने निद्रा आवी रे, ते उत्तर केम आपे ।।५।।

आशक माशुकमां रे, रुप गुण सहु देखे;
जवुं भासे छे तेने रे, अवर तेवुं नव पेखे ।।६।।

जेनुं चित्त ज्यां चोटयुं रे, तेने तेथी सुख थाये;
स्वाद शो छे अग्निीमां रे, चकोर भावे खाये ।।७।।

रीत प्रीतनी एवी रे, तेनुं सुख ते जाणे;
अनुभवथी अजाण्या रे, तेना अवगुण आणे ।।८।।

स्नेह सुखथी नव वाधे रे, देखी दुःख नव घटे;
जेम वृक्षने वलगी वेली रे, ते तो फरी नां लटे ।।९।।

शीखे सांभले न आवे रे, उद्धव ! पद्धत प्रेमतणी;
करवी नथी पडती रे, एनी मेले आवे बणी ।।१०।।

प्रीत बाझे तो सहज रे, छूटे नां पछी छोडी;
मच्छने दुःख दे छे रे, गल्या पछी अंकोडी ।।११।।

२०. प्रेम-परीक्षा

हे उद्धवजी ! यह प्रेमकी बात ही निराली है। उसे वाणीसे नहीं कहा जा सकता, कोई अनुभवी ही जान सकता है ।।१।।

प्रसूताकी पीड़ाको बाँझ स्त्री कैसे जान सकती है ? दूसरेके कहने मात्रसे उसका अनुभव कैसे किया जा सकता है ? ।।२।।

जिस प्रकार गूँगा शक्कर खाए अथवा सपना देखे तो मनमें सब कुछ जानते हुए भी वह दूसरेसे कह नहीं सकता; वैसी ही बात हमारी है ।।३।।

घायलका दुःख कायर भला क्या जाने ? इसी प्रकार ज्ञानी (योगी) यह नहीं जान सकता कि रतिकी गति (आनंद) क्या है ?।।४।।

जब प्रेम व्याप्त हो जाता है तब सारे नियम नष्ट हो जाते हैं। जिसे निद्रा आ रही है वह भला उत्तर किस प्रकार दे सकता है ?।।५।।

आशिक अपने माशूकमें सब रूप और गुण देखता है, किन्तु जैसे उन्हें एक दूसरेके रूप-गुण दिखाई देते हैं, वैसे दूसरा नहीं देख सकता ।।६।।

जिसका चित्त जिसमें रम गया है, उसे उसीसे सुख मिलता है। अग्नि-में भला कोई स्वाद है ? फिर भी, चकोर उसे बड़े प्रेमसे खाता है ।।७।।

प्रीतिकी रीति ही ऐसी होती है। उसका सुख प्रेमी ही जानते हैं। जिसको प्रेमका अनुभव नहीं है,उसे तो उसमें अवगुण ही नजर आते हैं ।।८।।

स्नेह न तो सुखसे बढ़ता है, न दुःखसे घटता है। जिस प्रकार वृक्षमें लिपटी हुई बेलि उससे दूर नहीं होती, उसी तरह प्रेम भी नहीं छूटता ।।९।।

हे उद्धव ! प्रेमकी पद्धति सीखने और सुननेसे नहीं आती। इसमें कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं होती। वह तो अपने आपही आ जाती है।।१०।।

प्रीति होती तो सहज है,लेकिन बादमें वह छुड़ानेपर भी नहीं छूटती। निगले जानेके बाद ही काँटा मछलीको दुःख देता है ।।११।।

साची प्रीत तो प्राण ले रे, साधारण थाय परी;
दादुर जल विण जीवे रे, माछलडां तो जाय मरी ॥१२॥

मोटी मननी मोहनी रे, प्रीत थी बीजी न मले,
जडपण जुओ, लोढुं रे, चमक ने देखी चले ॥१३॥

छीप रहे छे सागरमां रे, इच्छा स्वाति बुंदतणी;
जुओ दृष्टि चकोरनी रे, अचल रहे छे इन्दुभणी ॥१४॥

लज्जा सुधबुध सामर्थ्य रे, प्रेमी जनमां न टके;
मधुकर वांस कोरे रे, कमल नव भेदी शके ॥१५॥

मृग सहेजे मरे छे रे, पलायन अभ्यासी;
राग अनुराग पाशे रे, बंधायो न शके नासी ॥१६॥

दृष्टि प्रीतनो मार्यो रे, पतंग दीपकमां बले;
जाय प्राण पोतानो रे, तोये स्नेहीने रे मले ॥१७॥

रहे चातक तरस्यो रे, सदा मास बार लगी;
पीए स्वातीनुं वारि रे, अवर स्पर्शे न डगी ॥१८॥

विषना व्यसनीने रे, अमृत पण सुख नां करे,
पय पाणी थी उत्तम रे, मीन तेमां नांखे मरे ॥१९॥

जेनुं मन जे शुं मान्युं रे, तेने सुख तेथी मले;
ते विना तेथी सारुं रे, नां आवे तेनी आंख तले ॥२०॥

बे वैराटनां लोचन रे, इन्दु भानु भेद कशो;
कंज करमाय चन्द्रे रे, फूले रवि नेह वस्यो ॥२१॥

कण्ठे वलगी नां छूटे रे, ए प्रेमतणी फांसी;
काची (काचो) होय तो तूटे रे, सुणी जगनी हांसी ॥२२॥

छे अगम पथ स्नेहनो रे, ओधवजी! नथी दीठो;
त्यां लगी ज्ञान गोठे रे, जोग पण लागे मीठो ॥२३॥

सच्ची प्रीति प्राण ले लेती है, किन्तु आसानीसे छूटती नहीं। मेंढक बिना पानीके जी सकता है, किन्तु मछलियाँ मर जाती हैं ।।१२।।

मनकी मोहिनी गहन होती है। प्रीतिकी समानता दूसरेसे नहीं की जाती। लोहेकी जड़ता भी चुम्बकको देखकर खिंचने लगती है ।।१३।।

सागरमें रहते हुए भी सीप स्वाति बूँदकी इच्छा करती है। देखो चकोरको, उसकी दृष्टि चन्द्रमाकी ओर अचल रहती है ।।१४।।

प्रेमी-जनमें लज्जा, सुध-बुध और सामर्थ्य नहीं टिकता। भौंरा बाँसको छेद देता है, किन्तु कमलको नहीं छेद पाता ।।१५।।

भागनेमें प्रवीण मृग रागके अनुरागमें बँधकर भाग नहीं सकता, अपितु अपना प्राण आसानीसे दे देता है ।।१६।।

प्रीतिसे आहत पतंग दीपकमें जल जाता है। अपना प्राण देकर भी वह प्रेमीसे जाकर मिलता है ।।१७।।

चातक बारहों महीने प्यासा रहता है। वह स्वातिका ही पानी पीता है। विचलित होकर वह दूसरे जलका स्पर्श नहीं करता ।।१८।।

विषका व्यसनी अमृतसे भी सुख नहीं पाता। यद्यपि दूध पानीसे उत्तम है, किन्तु मछली दूधमें पड़कर अपना प्राण छोड़ देती है ।।१९।।

जिसका मन जिससे लगता है, उसे उसीसे सुख मिलता है। उसके सिवाय उसे उससे अच्छी वस्तु भी नहीं सुहाती ।।२०।।

इस विराटके चन्द्र-सूर्य दो लोचन हैं। उनमें क्या भेद है? किन्तु कमल चन्द्रमासे मुरझाता है और स्नेहके कारण सूर्यको देखकर फूल उठता है।।२१।।

प्रेमकी यह फाँसी कण्ठमें लगनेपर छूटती नहीं। हाँ, यदि वह कच्ची हो तो जगतके उपहाससे टूट जाएगी ।।२२।।

स्नेहका रास्ता अगम्य है। हे उद्धव! तुमने उसे जब तक नहीं देखा तब तक ही तुम्हें ज्ञान पसन्द आएगा और योग मीठा लगेगा ।।२३।।

जोग तो तेने जोईए रे, जेनुं मन जगमां भमे;
ते तो अचल अमारुं रे, चित्त रसियामां रमे ।।२४।।

जेनुं मन माने रे, जोग ते सुखे ग्रहो;
अमो तो एह मागुं रे, प्रीतमजीशुं प्रीत रहो ।।२५।।

तमारा हरि सघले रे, अमारा तो एक (ज) स्थले;
तमो रीझो चांदरणे रे, अमो रीझुं चन्द्र मले ।।२६।।

इन्दुने अवलोकी रे, चकोरनुं चित्त ठरे;
ते प्रकाशने पेखी रे, कहो शुं संतोष धरे ।।२७।।

एवां वचन सुणीने रे, ओधवनी भ्रांति टली;
जोग जंजाल छूटी रे, गयुं मन स्नेहे मली ।।२८।।

अभिमान मूकीने रे, उद्धव गोपी पाय पडचा;
कहुं (कहचुं) दया प्रीतमजी रे, निश्चे अेक तमने जडचा ।।२९।।

जिसका मन जगमें भटकता रहता है,उसको ही योगकी आवश्यकता है। हमारा मन तो अचल है, वह सदा अपने रसीले कृष्णमें रममाण है ।।२४।।

जिसका मन योगमें लगता हो, वह सुखसे उसे ग्रहण करे। हमारी तो यही याचना है कि प्रियतमसे प्रीति बनी रहे।।२५।।

तुम्हारा भगवान तो सर्वत्र है,किन्तु हमारा एक ही स्थानपर है। तुम चाँदनीको पाकर रीझते हो,किन्तु हम तो चन्द्र पाकर खुश होती हैं ।।२६।।

जब चकोरका मन चन्द्रमाको देखकर ही स्थिर होता है, तब भला वह अन्य किसीके प्रकाशको देखकर क्या सन्तोष धारण करेगा ?।।२७।।

ऐसे वचन सुनकर उद्धवजीकी भ्रान्ति दूर हो गई, योगका जञ्जाल छूट गया और मन स्नेहसे भर उठा ।।२८।।

उद्धवजी अभिमान छोड़कर गोपियोंके चरणोंमें जा पड़े और कहने लगे कि दयारामके प्रियतम निश्चयपूर्वक अकेले तुम्हें ही मिले हैं ।।२९।।

———————

२१. उधवजी, विचारो रे !

उधवजी विचारो रे, अन्तर आपणे,
वण समजे शी देवी रे शीख.
जोवा कर कंकण जोईए शीद आरसी,
होय विचार तो पासे परीख....उधवजी०।।टेक।।

तमारो तो हरि व्यापक सर्वत्र छे,
त्यारे कोहो अधिक ने ओछा कयांह,
नित उठी जाऊं छुं जाउं छुं शीद करी रह्या,
एवडुं शुं डाटचुं छे मधुपुरी मांह?...उधवजी०।।१।।

भ्रमर छे लोभी गन्ध कमल ने केतकी,
दूर थकी लावे छे सुगन्धी ग्रही वाय,
तेटलेथी हृदय रञ्जन न थातुं होय तो,
शिदने घेराय शीद कण्टकमां जाय?...उधवजी०।।२।।

दशे दिशा दिशे उद्योत इन्दुतणो,
पण ज्यां लगी अभ्रने ओथे चन्द,
सागर कुमोदादिक फूले तो फूलजो,
पण चित्त चकोरने न उपजे आनन्द....उधवजी० ।।३।।

विचारो तो मनने सेहेज रढ रुपनी,
कोण जाणे वदन वपुने शुं वेर,
व्यापकनी साथे करी कहो कोणे वातडी,
वातडी विना ते शी सुखनी ल्हेर?...उधवजी०।।४।।

त्यार लगी दयाना प्रीतम नथी ओलख्या,
ज्यार लगी सत्य नथी साकार,
रुप रस प्रेमनी पीडा ते त्यारे प्रीछशो,
अनुभव थाशे ओधव कोई वार....उधवजी० ।।५।।

२१. उद्धवजी, जरा सोचिए तो

● ● ●

उद्धवजी ! अपने दिलमें विचार तो करो। बिना समझे क्यों सीख देते हो? हाथ कंगनके लिए आरसीकी क्या आवश्यकता है? यदि सोचनेकी शक्ति हो तो उसे अपने पास ही देखो।

तुम्हारा हरी तो सर्वत्र व्यापक है न? उसके लिए कहीं कम और कहीं ज्यादा तो नहीं है? तब फिर वह हररोज 'जाता हूँ, जाता हूँ' ऐसा क्यों कहता है? मधुपुरीमें ऐसा क्या गड़ा पड़ा है? ।।१।।

भ्रमर कमल और केतकीकी सुगन्धका लोभी है न? वह सुगन्ध वायु दूरसे ढोकर ले आती है। पर उससे उसका हृदय तृप्त नहीं होता। इसीलिए वह कंटकोंमें जाकर फँसता है। ।।२।।

दसों दिशाओंमें चन्द्रकी चाँदनी फैल गई है। जब तक बादलोंकी आड़में चन्द्र छिपा हुआ है तब तक सागर, कुमुदिनि आदि भले ही फूलें, परन्तु चकोरके हृदयमें आनन्द उत्पन्न नहीं होता।।३।।

सोचनेपर मालूम होगा कि मनका सहज खिंचाव रूपके पीछे रहता है। लेकिन न मालूम तुम्हें क्यों मुखड़े और देहसे दुश्मनी है? बताओ तो व्यापकके साथ किसने बात की है? बिना बात किए सुखकी लहर भला कैसे? ।।४।।

जब तक सत्य साकार नहीं होता, तब तक दयारामके प्रीतमको नहीं पहचाना जा सकता। उद्धवजी! जब तुम्हें इसका कभी अनुभव होगा, तभी तुम इस साकार ईश्वरके रूप-रस-प्रेमकी विरह पीड़ाको पहिचान पाओगे।।५।।

———————

३२. प्रेमरस

जे कोई प्रेमअंश अवतरे प्रेम रस तेना उरमां ठरे . . . (टेक)

सिंहण केरुं दूध होय ते, सिंहण सुतने जरे;
कनकपात्र पाखे सहु धातु फोडीने नीसरे...प्रेमरस ।।१।।

सक्करखोरनुं सक्कर जीवन, खरना प्राण ज हरे;
क्षार सिंधुनुं माछलडुं ज्यम मीठा जलमां मरे...प्रेमरस ।।२।।

सोमवेली रसपान शुद्ध जे ब्राह्मण होय ते करे;
वगल वंसीने वमन करावे, वेदवाणी ऊचरे...प्रेमरस ।।३।।

उत्तम वस्तु अधिकार विना मले तदपि अर्थ नां सरे,
मत्सभोगी बगलो मुकताफल देखी चंचु नां भरे...प्रेमरस ।।४।।

एम काटि साधने प्रेम विना पुरुषोत्तम पूठ नां फरे,
दया। प्रीतम श्रीगोवर्धनधर, प्रेमभक्तिये वरे...प्रेमरस ।।५।।

२२. प्रेमरस

जो प्रेमका अंश लेकर अवतीर्ण हुए हैं, प्रेमरस उन्हींके हृदयमें स्थिर रह सकता है।

सिंहनीका दूध सिंहनीके पुत्रको ही हजम हो सकता है। केवल स्वर्णपात्रके सिवा वह (दूध) और किसीमें नहीं रखा जा सकता; दूसरी धातुओंके पात्रोंको फोड़कर वह बाहर बह निकलता है ।।१।।

शक्करखोरका जीवन ही शक्कर है, परन्तु वही (शक्कर) गधेका प्राण हर लेती है। उसी तरह खारे सागरमें रहनेवाला मत्स्य मीठे जलमें पड़कर मर जाता है।।२।।

सोमलताका रसपान शुद्ध ब्राह्मण ही कर सकता है। यदि वर्ण-शंकर उसका पान करे तो वह वमनके द्वारा निकल जाता है, यूँ वेद-वाणी कहती है।।३।।

उत्तम वस्तु अधिकारके बिना प्राप्त हो भी जाय तो उसका कोई अर्थ नहीं। मछली खानेवाला बगला मोतियोंको देख लेनेपर भी उनसे अपनी चोंच नहीं भरता।।४।।

इसी प्रकार, चाहे करोड़ों साधनाएँ क्यों न की जाएँ, परन्तु बिना प्रेमके पुरुषोत्तम भगवान दर्शन नहीं देते। दयाराम कहते हैं कि गोवर्द्धन-धारी प्रीतम भगवान कृष्ण प्रेम-भक्तिसे ही वरे जा सकते हैं।।५।।

---

२३. लोचन मननो झगडो

लोचन मननो रे, के झगडो लोचन मननो,
रसिया ते जननो रे, के झगडो लोचन मननो. (टेक)

प्रीत प्रथम कोणे करी, नन्दकुंवरनी साथ ?
मन कहे लोचन तें करी, लोचन कहे तारे हाथ. झगडो लोचन० ।।१।।

नटवर निरख्या नेन तें, सुख आव्युं तुज भाग.
पछी बंधाव्युं मुजने, लगन लगाडी आग. झगडो लोचन० ।।२।।

सुण चक्षु हुं पांगलुं, तुं माहारुं वाहन,
निगम अगम कयहुं सांभल्युं, दीठा विना गयुं मन ? झगडो लोचन० ।।३।।

भेलुं कराव्यो में तने, सुंदर वर संजोग,
मने तजी तुं नित मले, हुं रहुं दुःख विजोग. झगडो लोचन० ।।४।।

वनमां वहालाजी कने, हुं वसुं छुं सुन्य नेन,
पण तुजने नव मेलव्ये हुं नव भोगवुं चेन. झगडो लोचन० ।।५।।

च्हेन नथी मन कयम तने, भेटे श्याम शरीर,
दुःख माहारुं जाणे जगत, रात्र दिवस वहे नीर. झगडो लोचन० ।।६।।

मन कहे धीकुं हृदे धूम्र प्रगट त्यां होय,
ते तुजने लागे रे, नयन, तेहथकी तुं रोय. झगडो लोचन० ।।७।।

ए बेहु आव्यां बुद्धि कने, तेणे चुकव्यो न्याय,
मन लोचननो प्राण तुं, लोचन तुं मनकाय. झगडो लोचन० ।।८।।

सुखथी सुख दुःख दुःखथी, मन लोचन ए रीते,
दया प्रीतम श्रीकृष्ण शुं, बेहूं वडे थी प्रीत. झगडो लोचन० ।।९।।

———

२३. लोचन-मनका झगड़ा

यह तो नयन और मनका झगड़ा है। रसिक जनके लोचन और मनका यह झगड़ा है।

नन्दकुँवरके साथ प्रीति पहले किसने की? मन कहता है कि लोचन! तूने पहले प्रीति की और लोचन कहता है कि जो कुछ किया तेरे साथ रहकर किया ।।१।।

मन कहता है कि नयन! तूने नटवरको देखा और तुझे सुख मिला। बादमें तूने मुझे वहाँ बँधा दिया और अन्दर प्रेमकी आग भड़का दी ।।२।।

चक्षु! सुन मैं तो अपंग हूँ। तू मेरा वाहन है। अगम निगममें क्या कहीं सुना है कि बिना देखे मन कहीं गया हो? ।।३।।

मेरा उपकार है कि मैंने सुन्दर वरके साथ तेरा संयोग करा दिया। तू मुझे छोड़कर उससे नित्य मिलता है और इधर मैं वियोगके कारण दुःखी रहता हूँ ।।४।।

नयन! सुन, मैं तो वनमें प्रियतमके पास बसता हूँ, लेकिन तुझे प्रियतमसे बिना मिलाए मुझे चैन नहीं पड़ती ।।५।।

नयन कहता है :—मन, तू नित्य श्याम शरीरसे (नन्दकुँवरजी) से भेंटता है, फिर भी तुझे चैन नहीं है! ऐसा कैसे हो सकता है? मेरा दुःख तो जगत जानता है, मेरे आँसू रात-दिन बहते रहते हैं ।।६।।

मन कहता है :—मेरा हृदय जलता रहता है। उससे जो धुआँ उठता है, हे नयन, वही तुझे लगता है और उसीसे तू रोता है ।।७।।

तब दोनों बुद्धिके पास आए और उसने न्याय दिया। मन, तू लोचनका प्राण है और लोचन, तू मनकी काया है ।।८।।

सुखसे सुखी होना और दुःखसे दुःखी—मन और लोचनकी यही रीति है। दयारामके प्रीतम श्रीकृष्णको दोनों ही बहुत प्यार करते हैं ।।९।।

———————

२४. निश्चेनो महेल

निश्चेना महेलमां, वसे मारो वहालमो,
वसे व्रजलाडीलो, जेरे जाय ते झांखी पामे हे
भूल्या भमे ते बीजा सदनमां शोधे रे,
हरि नां मले एको ठामे रे...निश्चे० ॥१॥

सतसंग देशमां भक्ति नगर छे रे,
प्रेमनी पोल पूछी जा जो रे,
व्रेहे ताप पोलीआने मली मोहोले पेसजो रे,
सेवा सीडी चढी ज भेलां थाजो रे...निश्चे० ॥२॥

दीनता–पात्रमां, मनमणि मूकी ने,
भेट भगवन्तजीने करजो रे,
हुं भाव पुं भाव नोछावर करीने,
श्रीगिरिधरवर तमो वरजो रे...निश्चे० ॥३॥

एरे मण्डाणनुं मूल हरि इच्छा रे,
कृपा विना सिद्धि नां थाये रे,
पण श्री वल्लभ शरण थकी सहु पडे सेहेलुं रे,
दैवी जन प्रति दयो गाये रे...निश्चे० ॥४॥

२४. निश्चयका महल

मेरा बालम दृढ़ निश्चयके महलमें निवास करता है। वहीं रहता है ब्रज लाड़ला! जो वहाँ उसके पास जाता है उसे उसके दर्शन होते हैं। जो भूले हुए हैं वे उसकी खोजमें दूसरे सदनोंमें भटकते रहते हैं। किन्तु हरि उन्हें एक भी जगह नहीं मिलता ।।१।।

सत्संग नामक देशमें भक्ति नामका नगर है। उसमें जाकर प्रेमकी गली पूछना। विरह-ताप-रूपी पहरेदारसे मिलकर महलमें घुसना और सेवा-रूपी सीढ़ीपर चढ़कर नजदीक पहुँच जाना ।।२।।

फिर दीनताके पात्रमें अपने मनकी मणिको रखकर उसे भगवानकी भेंट चढ़ा देना। अहं तथा घमण्डके भावोंको न्यौछावरकर तुम श्री गिरिधरको वरण करना ।।३।।

हरिकी इच्छा प्रत्येक कार्यारम्भका आधार है। उनकी कृपा बिना सिद्धि नहीं मिलती। लेकिन श्री वल्लभकी शरणमें जानेसे सब बातें सरल हो जाती हैं, यूँ भक्तजनोंके लिए दयाराम गाता है ।।४।।

२५. मारुं ढणकतुं ढोर

मारुं ढणकतुं ढोर ढणके छे सहु नग्रमां,
सीम खेतर खलुं कांई न मूके,
ना जावुं जाय त्यांहां, ना खावुं खाय ते,
रखडनुं नित्य तेहेमां न चूके...मारुं० (टेक)

वाली लावुं घेर ने गोतुं मांडुं गल्युं,
लीलुं नीरुंछ पण ते न सूंघे,
पेलां राडांओ घास कयहुं कुसका,
मार खाई ने पण ते ज वूंगे...मारुं० ॥१॥

हेडलो होडेरडो मारो मान्यो नहीं,
थयुं हरायुं, हावां हुं तो हार्यो,
वश मारे नथी तदपि मारुं कहाव्युं,
माटे रहुं छुं भयभीत चिंतानो मार्यो...मारुं० ॥२॥

हे गुरु! हे गोपाल! में अरप्युं ए आपने,
वश करी राखों निज पासे मागुं,
साधुपणुं शीखवी वृन्दावन चारजो,
कलेश मारा टले पाय लागुं...मारुं० ॥३॥

हे हृषिकेश ए कलेश मुज मनतन तणा,
आप टालो, करो शुद्ध साचुं,
स्मरण सेवन बने अहर्निश आपनुं,
अचल आनन्द माणे, एह जाचुं...मारुं० ॥४॥

मन मति बगडतां सव कांई बगडियुं,
डरवुं बहु नाथजी! दया आणो,
जन दयाना प्रीतम श्री गोवर्धनधरण,
करुणादृष्टे जुओ, निज नो जाणो...मारुं० ॥५॥

———

२५. मेरा आवारा ढोर

मेरा आवारा ढोर सारे नगरमें भटकता है। जंगल, खेत, खलिहान किसीको नहीं छोड़ता। जहाँ नहीं जाना चाहिए वहाँ जाता है, जो चीज नहीं खानी चाहिए, खाता है। वह नित्यका भटकना नहीं छोड़ता।

उसे घेर-घारकर घर लाता हूँ और मीठी चीजें खानेको देता हूँ। लेकिन वह हरे चारे तकको भी नहीं सूँघता। मारनेपर भी वह घासका करब और भूसा खाता है ॥१॥

रोकने-थामनेपर भी मेरी बात नहीं मानता। ऐसा आवारा हो गया है वह! अब तो मैं हार गया हूँ। वह मेरे वशमें नहीं आता, पर कहलाता मेरा ही है। इसलिए मैं चिन्ताके मारे भयभीत रहता हूँ ॥२॥

हे गुरु! हे गोपाल! मैंने इसे आपको अर्पित कर दिया है। मैं चाहता हूँ कि आप इसे अपने वशमें करके अपने ही पास रखिए। इसे साधुत्वकी शिक्षा देकर वृन्दावनमें चराइए, जिससे मेरा कष्ट दूर हो जाए। मैं आपके पैरों पड़ता हूँ ॥३॥

हे हृषीकेश, मेरे मन-तनके इस क्लेशको दूर करो, इसे शुद्ध और सच्चा बनाओ। रात-दिन आपका स्मरण सेवन होता रहे और उसीमें अचल आनन्दकी अनुभूति हो—यही मेरी प्रार्थना है ॥४॥

मनके विकृत हो जानेसे सब कुछ बिगड़ जाता है, इसलिए हे नाथ, बहुत डर लगता है। अपने दास पर दया कीजिए। हे दयारामके प्रियतम गोवर्द्धनधारी भगवान, करुण दृष्टिसे मेरी ओर निहारिए। मुझे अपना ही मानिए ॥५॥

———————

३६. भटकतां भवमां रे

भटकतां भवमां रे, गया काल कोटि वही,
हद थई छे हावां रे, राखो हरि हाथ ग्रही ।। टेक ।।

आव्यो शरण त्रितापनो दाध्यो, शीतल कीजे श्याम,
करगरी कहुं छुं कृष्ण कृपानिधि ! राखो चरण सुखधाम,
करुणा कटाक्षे रे, किल्बिष कोष दही.........भटकतां० ।।१।।

जो मारा कृत समुं जोशो तो ठरशे बराबरी,
रत्न गुंजा कयम होय समतोल, हुं तो रंक ने तमे हरि,
माटे मन मोटुं रे, करो मुने रंक लही...भटकतां० ।।२।।

आशा भर्यो आव्यो अविनाशी, समर्थ लही तम पास,
धर्म धुरन्धर तम द्वारेथी हुं केम जाउं निराश,
निजनो करी लो रे "ना" तो मुने कहेशो नहीं...भटकतां० ।।३।।

अरज सांभलो अनाथ जन-नी श्रवणे श्री.रणछोड,
एक वार सन्मुख जुओ शामला पहोंचे मनना कोड,
हसी ने बोलावो रे, दया तुं तो मारो कही...भटकतां० ।।४।।

---

२६. भवमें भटकते

इस संसारमें भटकते हुए करोड़ों युग बीत गए। अब इसकी हद हो गई। हे हरि, हाथ पकड़कर रक्षा करो।

हे श्याम! मैं त्रितापका जला हुआ तुम्हारी शरण आया हूँ, मुझे शीतल करो। कृपानिधि कृष्ण! हाथ जोड़कर कहता हूँ, आप अपने सुखधाम चरणोंमें मुझे स्थान दो। आपके करुणाकटाक्षसे पापोंका कोष जल जाता है ॥१॥

यदि मेरी करनीकी ओर देखोगे, तो यह मुझसे बराबरी करना होगा। रत्न और घुँघुचीकी तुलना कैसी? मैं तो रंक हूँ और तुम भगवान हो। इसलिए मुझ जैसे रंकको अपनाकर उदार बनो ॥२॥

हे अविनाशी! मैं समर्थ देखकर आपके पास आशा लेकर आया हूँ। हे धर्म-धुरन्धर! मैं तुम्हारे द्वारसे निराश कैसे वापस जाऊँ? तुम मुझे अपना लो। 'ना' तो कहना ही मत ॥३॥

श्री रणछोड़! अपने कानसे मुझ अनाथ जनकी प्रार्थना सुन लो। हे श्याम! एक बार मेरी ओर देख लो, मनके अरमान पूरे हो जाएँ। 'दयाराम, तू मेरा है'—यूं कहकर हँसकर बुलाओ न! ॥४॥

———

३७. मूकशो मा

मारे अन्त समे अलबेला, मुजने मूकशो मा,
मारा मदनमोहनजी छेला अवसर चूकशो मा. ॥१॥

हरि ! हुं जेवो तेवो तमारो, मुजने मूकशो मा,
श्रीगुरु सोंप्यो सम्बन्ध विचारो, अवसर चूकशो मा. ॥२॥

मारा दोष कोष संभारी मुजने मूकशो मा,
शरणागतवत्सल गिरिधारी, अवसर चूकशो मा. ॥३॥

हरि ! मारे धर्म नथी कांई साधन, मुजने मूकशो मा,
नथी सत्संग स्मरण आराधन, अवसर चूकशो मा. ॥४॥

श्रीपति सर्वात्मा सर्वोत्तम, मुजने मूकशो मा,
मारा प्राणजीवन पुरुषोत्तम, अवसर चूकशो मा. ॥५॥

समर्थ करुणासिंधु श्रीजी, दयाने मूकशो मा,
मारे ओथ नथी कोई बीजी, अवसर चूकशो मा ॥६॥

———

२७. छोड़ न देना

मेरे अलबेले प्रभु! मुझे अन्त समय छोड़ न देना। मेरे मदन-मोहनजी, अन्तिम अवसरपर चूकना नहीं ॥१॥

हे हरि! मैं जैसा हूँ, तेरा ही हूँ। मुझे छोड़ न देना। श्री गुरुने मुझे आपको सौंपा है, इस सम्बन्धपर विचार करना और अवसर मत चूक जाना ॥२॥

मेरे दोषोंके समूहको याद करके मुझे छोड़ न देना। हे शरणागत-वत्सल गिरधारी, अवसर चूक मत जाना ॥३॥

हे हरि! मेरे पास धर्म-कर्मका कोई साधन नहीं है, मुझे छोड़ मत देना। मैंने सत्संग, स्मरण, आराधन कुछ नहीं किया है। इसलिए, अवसर मत चूक जाना ॥४॥

हे श्रीपति, सर्वात्मा, सर्वोत्तम, मुझे छोड़ न देना। मेरे प्राण-जीवन पुरुषोत्तम, अवसर चूकना मत ॥५॥

समर्थ करुणासिन्धु, श्री जी! दयारामको छोड़ना नहीं। मेरा कोई दूसरा सहारा नहीं है; इसलिए अवसर मत चुकाना ॥६॥

————

२८. मनजी मुसाफर ने

मनजी ! मुसाफर रे ! ! चालोने निज देश भणी,
मुलक घणा जोया रे, मुसाफरी थई छे घणी (टेक)

स्वपुर जवानो पन्थ आव्यो छे, रखे भूलता भाई,
फरीने आ मारग मलवो छे नहीं, एवी छे अवलाई,
माटे समजी चालो सुधारो, नां जोशो डाबा के जमणी. . . ।।१।।

वच्चे फांसीआ वाट मारवाने, बेठा छे बे चार,
माटे वलावा राखो बे त्रण के, त्यारे तेनो नहीं भार,
मल्यो छे एक भेदु रे, बतावी गति सौ ते तणी. . . ।।२।।

माल वहोरोते पहोरो शेठना नामनो, जे क्यहुं नां थाय अटकाव,
आपणो करतां जोखम आवे, लागे दाणीनो दाव–
माटे एटला सारु रे, नां थावुं वहोरतना धणी. . . ।।३।।

जो जो जुगत करीने जावुं छे, करजो सम्भालीने काम,
दास दयाने एम सुझे छे, हावां जईए पोताने धाम
सुझे छे हावां एवुं रे, अवध थई छे आपणी. . . ।।४।।

———

२८. मन मुसाफिरको

रे मन! ओ मुसाफिर!! अपने देशकी ओर चलो न! अब तक कई मुल्क देख डाले, बहुत-सी मुसाफिरी हो गई।

अपने नगरका रास्ता आ गया है, यह भूल न जाना। फिर-फिर यह मार्ग नहीं मिलेगा। इसलिए सोच-समझकर ठीक-ठीक चलो। दाएँ-बाएँ मत देखो ॥१॥

रास्तेमें दो-चार बटमार बैठे हुए हैं, अतः साथमें दो-तीन रक्षक ले लो। फिर इन बटमारोंकी कोई बिसात नहीं। एक भेदिया मिल गया है जिसने उन सबकी गतिविधिका परिचय दे दिया है ॥२॥

जो कुछ खरीदो, वह सेठके नामसे खरीदो ताकि कहीं रुकावट न आए। अपना कहनेमें जोखिम है, चुंगीवालेका दाँव लग सकता है। इसलिए खरीदके मालिक मत बनना ॥३॥

ध्यान रखना कि जुगत करके,तरकीबसे जाना है; इसलिए सम्हलकर काम करना। दास दयारामको यह सूझ रहा है कि अब अपने धाम चलना चाहिए। ऐसा लगता है कि अपनी अवधि पूरी हो गई है ॥४॥

———————

२९. तादृशी जन

तादृशी जन तेने जाणीए रे, जेमां एवा गुण होय रे,
निंदास्तुति नां करे कोईनी, सघले समदृष्टे जोय रे। (टेक)

दर्शन करतां मात्र मां रे, भूलावे प्रपञ्चनुं भान रे,
स्मरण करावे श्री कृष्णनुं, नसाडे अघ अज्ञान रे....तादृशी०॥१॥

सकल चराचरने विषे रे, वस्या देखे भगवान रे,
शुभ इच्छे सरव जगतनुं, लेश नहीं अभिमान रे....तादृशी०॥२॥

गुण गातां गोविंदना रे, पुलकित तनु थाय रे,
नेत्रे प्रवाह वहे प्रेमना, हरखे हृदय रुंधाय रे....तादृशी०॥३॥

परदुःखे दाझे घणुं रे, करे कोईनो नां द्रोह रे,
इन्द्रिजित साचा सदा, ना पामे मायामां मोह रे....तादृशी०॥४॥

अकल लीला नन्दलालनी रे, तेमां लग्न जेनुं मंन रे,
प्रीत बहु पर उपकारमां, सदा प्रसंन वदंन रे....तादृशी०॥५॥

नटवर झलके नेत्रमां रे, कान्ति करुणामय होय रे,
शान्त स्वभाव संतोष बहु, दोष कोईना न जोय रे....तादृशी०॥६॥

२९. प्रभुमय

उसे ही प्रभुमय मानना चाहिए जिसमें ये गुण हों : वह किसीकी निन्दा-स्तुति नहीं करता है, सर्वत्र समदृष्टिसे देखता है।

उसके दर्शन-मात्रसे सभी प्रपञ्च भूल जाते हैं, श्रीकृष्णका स्मरण होने लगता है तथा पाप और अज्ञान नष्ट हो जाते हैं ।।१।।

वह समस्त चराचरोंमें भगवानको उपस्थित मानता है और सम्पूर्ण जगतके शुभ की इच्छा करता है उसमें अभिमान लेश मात्र भी नहीं रहता ।।२।।

गोविन्दका गुणगान करते-करते उसका शरीर पुलकित हो उठता है, नेत्रोंसे प्रेमका प्रवाह बहने लगता है तथा हृदय हर्षसे रुँध जाता है ।।३।।

वह दूसरोंके दुःखसे खूब दुःखी होता है लेकिन स्वयं किसीका द्रोह नहीं करता है। वह सदा सच्चा जितेन्द्रिय रहता है तथा मायासे मोहित नहीं होता है ।।४।।

नन्दलालकी गूढ़ लीलाओंमें उसका मन तल्लीन रहता है। वह परोपकारमें बहुत प्रीति रखता है और सदा प्रसन्न-वदन रहता है ।।५।।

उसके नेत्रोंमें नटवर झलकता रहता है तथा शरीरसे करुणा झाँकती है। वह शान्त स्वभाववाला तथा अत्यन्त सन्तोषी होता है और किसीमें कोई दोष नहीं देखता है ।।६।।

वहाला लागे सहेजे सरवने रे, अति उदार जेनुं चित्त रे,
अनन्य भावे भजे कृष्णने, जेने वहालुं नहीं वित्त रे...तादृशी ०॥७॥

हरिगुरु वैष्णवने विषे रे, जेने सदा अति वहाल रे,
दृढ़ विश्वास अति दीनता, बोले वचन रसाल रे...तादृशी ०॥८॥

सेवा स्मरण सतसंग मांरे, जेनी आसक्ति अत्य रे,
कपट तो लेश नहीं हृदे, हरि चरणे सदा मत्य रे...तादृशी ०॥९॥

व्यसनावस्था विठ्ठलेश शुं रे, सदा मुखे कृष्ण नाम,
ते भगवदी तणा दासनो, सदा दास दयाराम...तादृशी ०॥१०॥

वह स्वाभाविक रूपसे सभीको प्रिय लगता है। उसका चित्त अत्यन्त उदार रहता है। वह अनन्य भावसे कृष्णको भजता है तथा द्रव्य उसे कतई प्यारा नहीं होता ।।७।।

उसे हरि, गुरु तथा वैष्णव जन अत्यन्त प्रिय होते हैं। उसका ईश्वरमें दृढ़ विश्वास होता है। ईश्वरके सामने वह अत्यन्त दीन रहता है तथा सदा मीठे वचन बोलता है ।।८।।

भगवानकी सेवा-स्मरणमें तथा सत्संगमें उसकी अति आसक्ति रहती है। वह हृदयमें लेशमात्र भी कपट नहीं रखता तथा हरिके चरणोंमें उसकी बुद्धि सदा लगी रहती है ।।९।।

उसे व्यसन केवल विट्ठलेश (विष्णु, कृष्ण) का तथा जिह्वापर सदा कृष्ण-नाम रहता है। जो ऐसे हैं वही भक्त हैं और भगवानके उन दासका दयाराम सदा दास है ।।१०।।

———————

३०. चित्त ! तुं शीदने चिंता धरे ?

चित्त ! तूं शीदने चिन्ता धरे ? कृष्णने करवुं होय ते करे.

स्थावर जंगम जड चैतन्यमां, मायानुं बल ठरे,
समरण कर श्रीकृष्णचन्द्रनुं, जन्म मरण भय हरे... कृष्णने०॥१॥

नव मास प्राणी कृष्णचन्द्रनुं, ध्यान गर्भमां धरे,
मायानुं आव्रण कर्युं त्यारे, लक्षचोराशी फरे... कृष्णने०॥२॥

तुं अन्तर उद्वेग धरे, तेथी कारज शुं सरे ?
ए धणीनो धार्यो मनसुबो, हर ब्रह्माथी ना फरे... कृष्णने०॥३॥

छे दोरी सरवनी एने हाथ, सहु भरायुं डगलुं भरे,
जेवो जन्त्र वजाड जन्त्री, तेवो स्वर नीसरे... कृष्णने०॥४॥

तारुं कर्युं जो थातुं होत तो, सुख संची दुःख हरे,
आपपणुं अज्ञान फल ए मूल विचारे खरे... कृष्णने०॥५॥

तारुं कीधुं थाय तेटलुं, हरि इच्छा अनुसरे,
सदा काल ते रीत नभे नहीं, शीद हुंपद मन धरे... कृष्णने०॥६॥

३०. चित्त! तू क्यों चिन्ता करता है?

चित्त, तू चिन्ता क्यों करता है? कृष्णको जो करना हो, करे।

स्थावर, जंगम, जड़, चेतन सभीमें मायाका बल दिखाई देता है। तू श्रीकृष्णचन्द्रका स्मरण कर, जिससे जन्म-मरणका भय हट जाए ।।१।।

प्राणी नव मास तक गर्भमें कृष्णचन्द्रका ध्यान करता है, लेकिन जब उसपर मायाका आवरण पड़ता है, तो वह चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण करता है ।।२।।

तू अपने हृदयमें व्याकुल होता है, इससे भला क्या होगा? उस स्वामीकी इच्छाको विष्णु और शिव भी नहीं पलट सकते ।।३।।

उसके हाथमें सबकी नकेलें हैं। सभी उसकी इच्छानुसार कदम उठाते हैं। जन्त्री (बजानेवाला) जैसा बजाता है, वैसा ही स्वर बाजेमेंसे निकलता है ।।४।।

यदि तेरा किया हुआ ही होता तो तू सुखको सञ्चित करके दुःखोंको नष्ट कर देता। हमारा अभिमान हमारे अज्ञानका फल है—इस मूल बात पर विचार कर ।।५।।

तुम्हारा किया उतना ही होता है जितना कि हरि चाहता है। सदासे ही यह रीति चली आ रही है। तू अपने मनमें अहंकार क्यों करता है? ।।६।।

जेवुं जेटलुं ज्यम जे काले, ते तेने कर ठरे,
कोईथी फेर पडे नहीं तेमां, शाने कूटी मरे...कृष्णने०॥७॥

थावानुं एणी पेरे थाशे, ज्यम श्रीफल पाणी भरे,
जावानुं एणी पेरे जाशे, ज्यम गज कोठुं गरे...कृष्णने०॥८॥

(माटे) थावानुं वण कीधे थाशे, उपनिषद ऊचरे,
(तुं) राख भरोंसो राधावरनो, शा माटे दया डरे?...कृष्णने०॥९॥

जिस कालमें जितना, जैसा और जिस तरह होना लिखा है, वैसा ही होता है। इसमें किसीके कुछ करनेसे फर्क नहीं पड़ता, तब तुम क्यों माथापच्ची करके मरते हो ।।७।।

जो होनेवाला है वह उसीकी प्रेरणासे होता है; जिस प्रकार कि नारियलमें पानीका भरा जाना। जो बात जानेवाली होती है वह उसीकी प्रेरणासे चली जाती है, जैसे हाथी अपनी सूँड़से कोठा (एक प्रकारका फल) निगल जाता है ।।८।।

उपनिषद् पुकारकर कहते हैं कि जो होनेवाला है वह अपने आप होगा। राधावरपर भरोसा रख दयाराम, डरता क्यों है ? ।।९।।

———